मोहन राकेश

एक और ज़िन्दगी

राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली

प्रथम संस्करण
दिसम्बर, १९६१

मूल्य
तीन रुपये

प्रकाशक :
राजपाल एण्ड सन्ज़
पोस्ट बाक्स १०६४, दिल्ली
●
कार्यालय व प्रेस :
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली
●
बिक्री-केन्द्र :
कश्मीरी गेट, दिल्ली

युगान्तर प्रेस, दिल्ली में मुद्रित

क्रम

कहानी : नये सन्दर्भों की खोज

हिन्दी में कहानी की चर्चा थोड़े दिनों से ही आरम्भ हुई है। दूसरी भाषाओं में भी कहानी की चर्चा बहुत विस्तार से नहीं हुई क्योंकि कविता के ह्रास की बात करते हुए भी प्राय: आलोचक, साहित्य और कविता को पर्यायवाची-से मानकर चलते हैं। कहानी के विकास की दृष्टि से यह स्थिति सम्भवत: हितकर ही रही क्योंकि इससे कहानी के मूल्यों का विवेक आलोचकीय परिभाषाओं के सहारे विकसित न होकर रचनात्मक प्रयोगों के सहारे ही विकसित हुआ।

हर महीने संसार की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में हज़ारों नई कहानियां प्रकाशित होती हैं। क्या इनमें सब कहानियां 'नई' होती हैं ? किस अर्थ में एक 'नई' कहानी 'पुरानी' कहानी से अलग होती है ? क्या कहानी की नवीनता का सम्बन्ध उसके वस्तुक्षेत्र से है ? और अच्छी कहानी क्या है ? क्या अच्छी कहानी वह है जो अच्छे लोगों के बारे में लिखी जाती है ?

कहानी की नवीनता का सम्बन्ध वस्तु और चरित्र की नवीनता के साथ जोड़ दिया जाए तो संसार में जितनी कहानियां लिखी जा रही हैं उनमें एक भी 'नई' कहानी ढूढ़ लेना कठिन होगा। ऐसा कोई भी विषय या क्षेत्र नहीं है जिसे लेकर पहले कहानियां नहीं लिखी जा चुकीं। इसलिए इस या उस क्षेत्र के जीवन को लेकर कहानियां

लिखनेवाले लोग जब अपनी नई दृष्टि, नई चेतना और नई भावभूमि की बात कहते हैं तो ऐसे लगता है जैसे वे अपने को किसी ऐसी चीज़ का विश्वास दिलाना चाहते हों जिसपर उनका भी मन विश्वास नहीं करता। निःसंदेह कहानी की सार्थकता इस बात में नहीं है कि वह किस नये अजायबघर से कौन-सा अजूबा लाकर हमारे सामने पेश करती है। नई तरह के व्यक्ति या नई तरह के वातावरण का चित्रण कर देने से एक नई कहानी की सृष्टि नहीं हो जाती।

कुछ दिन पहले शेखर जोशी के कहानी संग्रह 'कोसी का घटवार' की भूमिका में यह शिकायत पढ़ी थी कि औद्योगिक जीवन के सम्बन्ध में लिखी गई कहानियों को आलोचकों ने वह मान्यता नहीं दी जो ग्राम-जीवन को लेकर लिखी गई कहानियों को दी है। औद्योगिक जीवन को लेकर लिखी गई शेखर की कहानी 'बदबू' काफी अच्छे स्तर की है, परन्तु मेरी दृष्टि में उनकी सबसे अच्छी कहानी 'कोसी का घटवार' है, जो पार्वत्य प्रदेश के दो साधारण प्राणियों की भावात्मक ट्रेजेडी को लेकर लिखी गई है। इसलिए शेखर का यह सोचना गलत है कि उसकी कहानियों की विशेषता एक विशेष वर्ग या समुदाय के सम्बन्ध में लिखने के कारण है। औद्योगिक जीवन को लेकर संसार में कई एक अच्छी कहानियां लिखी गई हैं, परन्तु इसी जीवन के सम्बन्ध में कितनी हीं निर्जीव और यान्त्रिक-सी कहानियां भी लिखी गई हैं। किस वर्ग या क्षेत्र को लेकर कहानी लिखी जाती है, निःसंदेह इससे कहानी के मूल्य पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

इसी तरह कहानी की अच्छाई या बुराई का सम्बन्ध इस बात से कदापि नहीं है कि जिन चरित्रों को कहानी में चित्रित किया गया है, वे भले हैं या बुरे—अपना सरपत काटकर किसीको दे आते हैं या नहीं। यदि चरित्र ही उदात्तता की कहानी कसौटी है, तो गुंडों, जुआरियों,

वेश्याओं और घूसखोर अफ़सरों को लेकर लिखी गई संसार की सब कहानियां रद्दी हैं। चरित्र की श्रेष्ठता ही कहानी की श्रेष्ठता है, तो संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियां आज से हज़ार साल पहले लिखी जा चुकी हैं।

कहानी की बात किसी भी कोण से उठाई जा सकती है। कहानी का शिल्प एक कोण है, भाषा दूसरा, यथार्थ की अभिव्यक्ति तीसरा और सांकेतिकता चौथा। कोण और भी हैं और हर कोण से विचार कई भूमियों पर किया जा सकता है। परन्तु किसी भी एक उपलब्धि से कहानी कहानी नहीं बनती—कहानी की आन्तरिक अन्विति का निर्माण इन सभी उपलब्धियों के सामंजस्य से होता है। यदि एक-एक कोण से देखते हुए ही कहानी की अच्छाई या बुराई का निर्णय दिया जाए तो संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियां भी किसी न किसी दृष्टि से बेकार सिद्ध की जा सकती हैं और बहुत हीन स्तर की कृतियों में भी किसी न किसी कोण से श्रेष्ठता का निदर्शन किया जा सकता है। कहानी की इस या उस विशेषता की चर्चा करते हुए जिन प्रसिद्ध कहानीकारों का हवाला दिया जाता है, उनकी रचनाओं में बस वही एक-एक विशेषता नहीं है जिसके लिए उनका स्मरण किया जाता है। ओ हेनरियन शिल्प और चेखोवियन संवेदनाओं के दायरे में पड़कर परेशान हुए लोग अक्सर यह भूल जाते हैं कि ओ हेनरी और मोपासां कोरे शिल्पकार या साहित्यिक मदारी ही नहीं थे जिन्होंने जब-तब अपना पिटारा खोलकर कुछ चमत्कारपूर्ण करतब दिखा दिए। 'नेकलेस' तथा 'गिफ्ट आव द मागी' जैसी कहानियों का एक मानवीय पक्ष भी है, उनमें तात्कालिक जीवन की विडम्बनाओं का संकेत भी है। मोपासां की कहानियां अपने फ्लैश में उस काल के फ्रांस की कई सजीव झांकियां प्रस्तुत करती हैं। दूसरी ओर चेखव की कहानियां शिल्प की दृष्टि से ढीली और मन पर मंडरानेवाली छायाओं

के प्रभाव से लिखी गई भटकी हुई कहानियां नहीं हैं। चेखव ने अपनी कहानियों को एक निश्चित गठन देने के लिए जितनी मेहनत की है उतनी शायद ही किसी अन्य कहानीकार ने की हो—यहां तक कि मोपासां और ओ हेनरी ने भी नहीं।

परन्तु आज की हिन्दी कहानी के मूल्यों की चर्चा करते हुए विदेशी कहानीकारों के लम्बे-चौड़े हवाले देना सिवाय हीनता की भावना के और कुछ नहीं है। हर देश और भाषा की कहानी अपनी परिस्थितियों और अपने लेखकों की सामर्थ्य के अनुसार विकसित होती है। हिन्दी कहानी अपने विकास की जिस मंजिल पर है, वहां उसकी आन्तरिक उपलब्धियों और अनुपलब्धियों का विश्लेषण न करके जब ओ हेनरी की-सी गठन मोपासां के-से व्यंग्य और चेखव की-सी अन्तर्दृष्टि का ज़िक्र किया जाता है तो बात बहुत कच्ची और सतही प्रतीत होती है। हिन्दी कहानी भानुमती का पिटारा नहीं है जिसमें संसार के सब लेखकों की सब विशेषताएं उपलब्ध होनी चाहिए। किसी भी भाषा की कहानी का मूल्यांकन करते समय हमारी दृष्टि दो बातों पर रहनी चाहिए। एक तो यह कि कहानी की आंतरिक उपलब्धियों का विकास उसमें किन स्तरों पर हुआ है और दूसरे यह कि क्या उस भाषा की कहानी के विकास को एक निश्चित परम्परा के अन्तर्गत रखकर देखा जा सकता है।

जहां तक कहानी की आंतरिक उपलब्धियों का सम्बन्ध है, उनमें सांकेतिकता को कहानी की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि माना जा सकता है। यह सांकेतिकता आज की कहानी की, या किसी एक भाषा की कहानी की ही उपलब्धि नहीं, कहानी-मात्र की एक अनिवार्य उपलब्धि है। पुरानी कहानी से नई कहानी इस अर्थ में अलग होती है कि उसमें सांकेतिकता का विस्तार पहले से भिन्न स्तरों पर होता है। बात वही होती है और जीवन के उसी कैनवस से उठाई जाती है। मगर उसके

सम्बन्ध में लेखक के अनुभव की निजता, जीवन के यथार्थ की उसकी व्यापक पकड़ और भाषा तथा शिल्प के क्षेत्र में उसकी अपनी प्रयोगात्मकता उसकी रचना को भिन्नता और एक और ही सार्थकता प्रदान कर देती है।

पिछले दशक में लिखी गई हिन्दी कहानियों की विशिष्ट उपलब्धि सम्भवत: यही है कि उनमें सांकेतिकता के विभिन्न स्तरों का बहुमुख विकास हुआ है। विश्व-कथा-साहित्य के सन्दर्भ में देखते हुए चरित्र या क्षेत्र की ऐसी कोई नवीनता नहीं है जिसकी ओर हिन्दी के नये कहानीकारों का ध्यान पहली बार गया हो। कहा जा चुका है कि किसी क्षेत्र विशेष के सम्बन्ध में लिखी जाने से ही कोई कहानी अच्छी या बुरी नहीं हो जाती है। 'कफन' इसलिए एक श्रेष्ठ कहानी नहीं है कि वह एक विशेष क्षेत्र से उठाई गई है। 'आदर्शोन्मुखता' की कसौटी से तो वह 'प्रेमचन्द की परम्परा' की कहानी है ही नहीं। उस कहानी की विशेषता उसके अन्तर्निहित संकेत के कारण है। कहानी के चरित्रों में एक मार्बिडिटी है, परन्तु कहानी का संकेत मार्बिड नहीं है। यही बात 'शतरंज के खिलाड़ी' के सम्बन्ध में कही जा सकती है। इसलिए प्रेमचन्द की कहानियों की चर्चा करते हुए यह बेहतर होगा कि उनकी आंतरिक उपलब्धियों को सामने रखा जाए, ग्राम जीवन और आदर्शोन्मुखता की बातें कहकर भ्रांतियां खड़ी न की जाएं।

मैंने पहले कहा है कि आज की हिंदी कहानी के अन्तर्गत सांकेतिकता का विकास विभिन्न स्तरों पर हुआ है। कुछ लोगों ने कहानी के अन्तर्गत रूपकात्मक प्रयोगों को ही कहानी की सांकेतिकता मान लिया है और उसी आधार पर आज की हिन्दी कहानी की सांकेतिक उपलब्धियों का ब्यौरा प्रस्तुत कर दिया है। परन्तु रूपकात्मकता कहानी की सांकेतिकता का एक रूप है। यह रूपकात्मकता बहुत दूर तक ले जाई जाए तो पहले

के तुलनात्मक अलंकारों—उपमा, उत्प्रेक्षा आदि की तरह अखरने भी लगती है। इसके लिए कई बार लेखक कल्पनाश्रित बिम्बों का विधान करता है जो कहानी को यथार्थ भूमि से हटा देते हैं। कविता और कहानी में यह अन्तर तो है ही कि जहां कल्पनाश्रित बिम्बों का विधान कविता में एक चमत्कार ला देता है, वहां कहानी को वह कमज़ोर कर देता है। कहानीकार बिम्बों के माध्यम से एक भाव या विचार को सफलतापूर्वक तभी व्यक्त कर सकता है जब वे बिम्ब यथार्थ की रूपाकृतियों से भिन्न न हों—उनके संघटन में जीवन के यथार्थ को पहचाना जा सके। ज़रा भी 'अनकर्न्विसिंग' होते ही एक सुन्दर संकेत के रहते हुए भी कहानी असमर्थ हो जाती है। कहानी की वास्तविक सामर्थ्य इसीमें है कि बड़ा से बड़ी बात कहने के लिए भी लेखक को असाधारण या असामान्य का आश्रय न लेना पड़े—साधारण जीवन के साधारण संघटन से ही विचार की अनुगूंज पैदा कर सके।

इसलिए कहानी की सहज सांकेतिकता रूपकात्मक सांकेतिकता से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। कहानी का वास्तविक संकेत कहानी की सहज गठन से स्वत: उभर आता है। आज की हिन्दी कहानियों में 'चीफ की दावत' और 'दोपहर का भोजन' जैसी कहानियां उदाहरण रूप में रखी जा सकती हैं। 'चीफ की दावत' का संकेत मां के चरित्र के माध्यम से उभरता है और 'दोपहर का भोजन' में अभावग्रस्त घर की एक साधारण-सी दोपहर के वर्णनमात्र से। इन दिनों की लिखी हुई कितनी ही और ऐसी कहानियां मिल जाएंगी जिनमें कई-कई तरह के संकेत हैं—वे संकेत जो चरित्रों की भाव-भंगिमाओं और उनकी साधारण बातचीत से उभरते हैं, या केवल वातावरण के चित्रण से या केवल कहानी के शिल्प या कहने के ढंग से ही। कहानी के अन्तर्निहित संकेत तक न जाकर जब केवल ऊपरी सतह पर ही उसका अध्ययन किया जाता है तो कई बार

एक बहुत अच्छी कहानी भी साधारण और सपाट-सी प्रतीत होती है। दूसरी ओर यदि कहानी में संकेत नहीं है, तो ऊपरी ढांचे को कितना ही संवारा और बेल-बूटों से सजा लिया जाए, वह सही अर्थ में कहानी नहीं बन पाती—वह एक नैरेटिव या विवरण-मात्र बनकर रह जाती है। कहानी कविता या चित्रकला के गुण से कहानी नहीं बनती, अपने गुण से कहानी बनती है—सजीव और सशक्त भाषा में यथार्थ के प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करते हुए उनके माध्यम से एक संकेत देकर।

आज* के कुछ एक कहानीकारों की रचनाओं में कहानी की सांकेतिकता का विकास भिन्न-भिन्न स्तरों पर हुआ है, परन्तु उनमें सामान्यता इस दृष्टि से है कि हवाई या अमूर्त संकेतों में भटकने की प्रवृत्ति उनमें नहीं है। आज की कहानी, अपने मुख्य प्रवाह में, यथार्थ की मांसल भूमि पर वर्तमान रहकर ही लिखी जा रही है। इस तरह पहले की परम्परा से उसका सम्बन्ध कटा नहीं है। सांकेतिक उपलब्धियों की दृष्टि से इस पीढ़ी के लेखकों का बहुत कुछ प्रयत्न उनका अपना है। इस कहानी की जड़ें आसपास के यथार्थ की भूमि में हैं, इसलिए इसका एक अपना निश्चित रूप है। इस दृष्टि से वह ठेठ इस समाज और जीवन की कहानी है, हिन्दी की अपनी कहानी है। परम्परा के साथ सम्बन्ध की सार्थकता इस दृष्टि से है कि प्रेमचन्द के बाद की कहानी में कई ऐसे प्रयोग हुए हैं जिनमें व्यक्तियों और स्थानों के नाम छोड़कर और कुछ भी ऐसा नहीं था जिसका सीधा सम्बन्ध भारतीय जीवन से हो। वे कहानियां किसी भी देश की कहानियां हो सकती थीं, हमें अपने आसपास की कहानियां तो वे कदापि नहीं लगतीं। उन कहानियों में कुछ अमूर्त संकेत हैं जो काल्पनिक बिम्बों पर आश्रित हैं। इस तरह की कहानियों को एक विशेष तरह की कविता से अलग करके देखना कठिन है। फिर कुछ ऐसी कहानियां भी लिखी जा रही थीं जिनमें अपने आसपास के यथार्थ को

रूमानी लिहाफ में लपेटकर प्रस्तुत करने के प्रयत्न थे। सम्भवतः उस काल में एक ओर फ्रेंच कहानी और दूसरी ओर उर्दू कहानी का हिन्दी कहानी पर बहुत प्रभाव रहा। अमूर्त संकेतों और रूमानी यथार्थ की कहानियां हिन्दी में आज भी लिखी जाती हैं तथा कुछ अन्य भाषाओं के कथा-साहित्य की उपलब्धियों को छू लेने के और प्रयत्न भी दृष्टिगोचर होते हैं। परन्तु हिन्दी की नई कहानी जिस रूप में विकसित हुई है, उस रूप में उसका भारतीय जीवन के धरातल से गहरा सम्बन्ध है और इसीलिए वह केवल 'साफिस्टिकेटिड' पाठक की कहानी न होकर साधारण पाठक की कहानी बनी रही है। यह बात कम महत्त्वपूर्ण नहीं कि अपनी सांकेतिक उपलब्धियों के बावजूद आज की हिन्दी कहानी नई कविता की तरह सामान्य पाठक से अपना सम्बन्ध तोड़ नहीं बैठी। यह तो असंदिग्ध है ही कि जिस रचना का प्रेरणा-स्रोत जीवन है, उसके प्रति जीवन की भी ममता रहती है। जो रचना जीवन की ओर भृकुटियां चढ़ाकर देखती है, जीवन भी उसका तिरस्कार कर देता है। कहानी की वर्तमान दिशा व्यक्ति की आन्तरिक कुण्ठाओं की दिशा न होकर एक सामाजिक दिशा है, यह बात उसकी आगे की सम्भावनाओं को व्यक्त करती है।

परन्तु साहित्य के इतिहास में कई बार ऐसा हुआ है कि जो लोग दूसरों की दी हुई रूढ़ियों से हटकर कुछ नया लेकर सामने आए, वे शीघ्र ही अपनी रची हुई रूढ़ियों में ग्रस्त होकर रह गए। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में भी आज यह आशंका सामने है। पिछले छः-सात वर्षों में कई एक अच्छी कहानियां लिखी गईं क्योंकि इस पीढ़ी के कहानीकारों में नये सन्दर्भों की खोज की व्याकुलता थी। वे सन्दर्भ कला के भी थे और जीवन के भी—यद्यपि सर्वत्र उस जीवन के नहीं जो कि अपनी समग्रता में हमारे चारों ओर जिया जा रहा है, जिसके बाहरी रूप में दिन-

प्रतिदिन अधिक संकुलता आ रही है, जो बदल रहा है और जिसकी गति के भाग के रूप में हम अपने चारों अनास्था और अविश्वास भी देखते हैं, परन्तु फिर भी जिसमें केवल अनास्था और अविश्वास ही नहीं है क्योंकि आन्तरिक रूप में आज भी वह अपने धरातल से हटा नहीं है। हिन्दी की नई कहानी के अधिकांश प्रयोगों में जिस जीवन का चित्रण हुआ है, वह इस उफनती और शोर करती हुई धारा से हटा हुआ जीवन है, उन अकेले किनारों का जीवन जहां अभी तक सामन्ती संस्कारों की छायाएं मंडराती हैं। उस जीवन की स्थिरता, शान्ति और उज्ज्वलता की बात करते हुए उस दायरे से बाहर न निकलकर कुछ लोगों ने अपने प्रयोग-क्षेत्र को बहुत सीमित कर लिया है। निःसन्देह पिछले कुछ वर्षों में हिन्दी के कई एक नये कहानीकारों की निश्चित सामर्थ्य सामने आई है—उनसे कई-कई समर्थ रचनाओं की आशा की जा सकती है। परन्तु इधर कुछ ऐसा भी प्रतीत होने लगा है कि उन कहानीकारों ने अपने पैटर्न और सन्दर्भ निश्चित कर लिए हैं, वे अपने अब तक के प्रयोगों को ही अपना आदर्श मानकर चलने लगे हैं।

परन्तु कहानीकार अपनी जगह पर रुका रह सकता है, जीवन अपनी जगह पर नहीं रुकता। जीवन का वस्तु-क्षेत्र वही है, मनुष्य की मूल प्रकृति वही है, परन्तु जीवन के संदर्भ हर नये दिन के साथ बदल रहे हैं। बात नई जगह जाकर नई तरह के व्यक्ति की कहानी लिखने की नहीं, उसी जगह रहकर, उसी इन्सान के उन्हीं अन्तर्द्वन्द्वों को जीवन के नये सन्दर्भ में देखने की है। जीवन के मूल्य जब बदलते हैं तो सब जगह एक ही तरह से नहीं बदलते। हर देश और जाति के संस्कार बदलते हुए मूल्यों को अपनी ही तरह से ग्रहण करते हैं जिससे परिवर्तन का भी हर जगह अपना एक अलग रंग हो जाता है। आज हमारे चारों ओर जीवन तेज़ी से बदल रहा है, इसका अर्थ यह है कि हम बदल रहे हैं। यदि हम

अपने इस बदलते हुए 'सेल्फ' को पहचानने का प्रयत्न नहीं करते, अपने इस 'सेल्फ' की ही कहानी नहीं कहते, तो इसका अर्थ यह है कि या तो हम किन्हीं अन्तर्मुख ग्रन्थियों में उलझे हैं, या जीवन की चुनौती को ठीक से स्वीकार करने से कतराते हैं।

बहुत-से लोग जब भारतीय जीवन की बात करते हैं तो प्रायः इस अर्थ में कि रूढ़ियों के दायरे में उलझा और अशिक्षा के अंधेरे आवर्त में पड़ा हुआ जीवन ही भारतीय जीवन है। परोक्ष रूप से भारतीय संस्कृति का सम्बन्ध भी ऐसे ही जीवन के साथ जोड़ दिया जाता है। ऐसी दृष्टि रखने का अर्थ तो यह है कि भारतीय जीवन और भारतीय संस्कृति सामन्ती रूढ़ियों का ही नाम है और आज जीवन उत्तरोत्तर भारतीयता और संस्कृति से शून्य होता जा रहा है!

हमारा जीवन आज एक बड़े संक्रान्तिकाल में से गुज़र रहा है। ज़िन्दगी की नब्ज़ इतनी तेज़ है कि उसे हर जगह और हर पल महसूस किया जा सकता है। हम आज बड़ी-बड़ी वेधशालाओं में बैठे ऊंचे-ऊंचे सपने देख रहे हैं और स्कूलों, दफ्तरों और कारखानों में अपने अधिकारों के लिए लड़ते हुए शहीद भी हो रहे हैं। आज के जीवन में घुटन भी है और उस घुटन के साथ संघर्ष भी है। जीवन की हर हताशा का अन्त कुएं या बावली में जाकर ही नहीं होता—सामाजिक स्तर पर उससे लड़ने का प्रयत्न भी किया जाता है। जीवन का यह विराट् क्या भारतीय नहीं?

बात जीवन के इन्हीं सन्दर्भों को कहानी के अन्तर्गत व्यक्त करने की है। इकाई का जीवन एक इकाई का जीवन ही नहीं होता, एक समाज और एक समय के जीवन की प्रतिध्वनि भी उसमें सुनी जा सकती है। एक साधारण घटना साधारण घटना ही नहीं होती, जीवन के व्यापक क्षितिज में काम करती हुई शक्तियों की एक अभिव्यक्ति भी होती है।

जो कुछ सामने आता है, उससे उतने का ही पता नहीं चलता, ऐसे बहुत कुछ का भी पता चलता है जिसे हम प्रत्यक्ष रूप से देख नहीं पाते। व्यक्तियों, घटनाओं और परिस्थितियों को उस व्यापक सन्दर्भ में देख और पहचानकर ही उनका सही चित्रण किया जा सकता है। कहानी आखिर जीवन के द्वन्द्वों और अन्तर्द्वन्द्वों को ही तो चित्रित करती है। कहानीकार की दृष्टि इन द्वन्द्वों और अन्तर्द्वन्द्वों को पहचानकर साधारण से साधारण घटना के माध्यम से उनका संकेत दे सकती है। वस्तु और संकेत के अन्तर को इसीसे समझा जा सकता है। वस्तु की साधारणता कहानी की साधारणता नहीं होती, और इसी तरह वस्तु की अस्वस्थता कहानी की अस्वस्थता नहीं होती। कहानी अस्वस्थ तब होगी जब उसका संकेत अस्वस्थ हो—उसमें कही गई लेखक की बात एक अस्वस्थ दिशा की ओर संकेत करती हो। ऐसी भी कहानियां लिखी जाती हैं जिनमें वस्तु, चरित्र, भाषा और शिल्प, सभी कुछ सुन्दर होता है—केवल उनके संकेत में एक अस्वस्थता रहती है। वे व्यक्ति की कुण्ठा को 'कास्मेटिक स्टोर्स' के सभी उपादानों से सजाकर या उन्मुक्त प्राकृतिक सौन्दर्य की पृष्ठभूमि के आगे रखकर इस तरह प्रस्तुत करती हैं कि उससे वह कुण्ठा ही सुन्दर प्रतीत होती है। इसी तरह भाषा और बिम्बों का रेशमी लिबास पहनाकर कुण्ठाओं में एक आकर्षण और सार्थकता भरने का प्रयत्न किया जाता है। कहानी यदि घुटन और कुण्ठा में सार्थकता देखती है, तो वह अस्वस्थ है। जीवन के प्रति विरक्ति उत्पन्न करती है तो वह अस्वस्थ है। परन्तु यदि अस्वस्थता कहानी की वस्तु में ही है और उसके संकेत से उस अस्वस्थता को लेकर असंतोष और विद्रोह की भावना जागती है, उस अस्वस्थता को हटाने के लिए कुछ करने की इच्छा होती है, तो कहानी अस्वस्थ नहीं है।

नये सन्दर्भों को खोजने का यह अर्थ नहीं कि अपने वस्तु-क्षेत्र से

बाहर जाया जाए। जीवन के नये सन्दर्भ अपने वातावरण से दूर कहीं नहीं मिलेंगे, उस वातावरण में ही ढूंढ़े जा सकेंगे। अभावग्रस्त जीवन की विडम्बना केवल खाली पेट और ठिठुरते हुए शरीर के माध्यम से ही व्यक्त नहीं होती। प्यार केवल सम्पन्नता और विपन्नता के अन्तर से ही नहीं हारता। ममता केवल बलिदान करके ही सार्थक नहीं होती। अनाचार का सम्बन्ध रिश्वत और बलात्कार के साथ ही नहीं है, और विश्वास केवल उठी हुई बांहों के सहारे ही व्यक्त नहीं होता। हर रोज़ के जीवन में यह सब कुछ अनेकानेक सन्दर्भों में और कई-कई रंगों में सामने आता है। आज के जीवन ने उन रंगों में और भी विविधता ला दी है। बात उन विविध रंगों को पकड़ने और कहानी की सांकेतिक अन्विति में अभिव्यक्त करने की है। जीवन के नये सन्दर्भ कलात्मक अभिव्यक्ति के नये सन्दर्भ स्वतः ही प्रस्तुत कर देते हैं। कहानी के शिल्प का विकास लेखक की प्रयोग बुद्धि पर उतना निर्भर नहीं करता, जितना उसके मैटर की आन्तरिक अपेक्षा पर। पाठक की रुचि के उत्तरोत्तर परिष्कार से भी एक नई मांग उत्पन्न होती है। लेखक यदि स्वयं अपनी रचना का पाठक बना रहता है तो उसका असन्तोष ही उसे अभिव्यक्ति के नये आयामों को छूने की ओर प्रवृत्त करता है। शिल्प के बदलने में लेखक के असन्तोष और मैटर की आन्तरिक अपेक्षा दोनों का ही योग रहेगा। यदि शिल्प का चौखटा तैयार करके उसमें मैटर को फिट करने का प्रयत्न किया जाए, तो उससे कुछ भी हासिल नहीं होगा—क्योंकि रचना के नये समर्थ शिल्प का विकास केवल प्रयोग की चेतना से नहीं, नये मैटर के सामने पुराने शिल्प की असमर्थता के कारण होता है।

आई–१०१, कीर्तिनगर
नई दिल्ली–१५

—मोहन राकेश

सुहागिनें

कमरे में दाखिल होते ही मनोरमा चौंक गई। काशी उसकी साड़ी का पल्ला सिर पर लिए ड्रेसिंग टेबल के पास खड़ी थी। उसके ओठ लिपस्टिक से रंगे थे और चेहरे पर बेहद पाउडर पुता था, जिससे उसका सांवला चेहरा डरावना लग रहा था। फिर भी वह मुग्ध भाव से शीशे में अपना रूप निहार रही थी। मनोरमा उसे देखते ही आपे से बाहर हो गई।

"माई," उसने चिल्लाकर कहा, "यह क्या कर रही है ?"

काशी ने हड़बड़ाकर साड़ी का पल्ला सिर से हटा दिया और ड्रेसिंग टेबल के पास से हट गई। मनोरमा के गुस्से के तेवर देखकर पल-भर तो वह सहमी रही। फिर अपने स्वांग का ध्यान आ जाने से हंस पड़ी।

"बहनजी, माफी दे दें," उसने मिन्नत के लहजे में कहा, "यह कमरा ठीक कर रही थी। शीशे के सामने आई तो ऐसे ही मन कर आया। आप मेरी तनखाह से पैसे काट लेना।"

"तनखाह से पैसे काट लेना !" मनोरमा और भी भड़क उठी, "पंद्रह रुपये तनखाह है और बेगम साहब साढ़े छह रुपये लिपस्टिक के कटाएंगी। कम्बख्त रोज़ प्लेटें तोड़ती है, मैं कुछ नहीं कहती। घी, आटा, चीनी, सब चुराकर ले जाती है और मैं देखकर भी नहीं देखती। सारा

स्टाफ शिकायत करता है कि कुछ काम नहीं करती, किसीका कहा नहीं मानती। कमेटी के मेंबर अलग मेरी जान खाते हैं कि इसे दफा करो, रोज़-रोज़ अपना रोना लेकर हमारे यहां आ मरती है। मैं फिर भी तरह दिए जाती हूं कि जगह-जगह मारी-मारी न फिरे, और उसका तू मुझे यह बदला देती है ? कमीनी कहीं की !"

उसने बेंत की कुर्सी को इस तरह अपनी ओर खींचा, जैसे उसीने कोई अपराध किया हो, और उसपर बैठकर माथे को अपने ठंडे हाथ से मल लिया। काशी चुपचाप खड़ी रही।

"चालीस की होने लगी, मगर बांकपन की चाह अब भी बाकी है !"

मनोरमा फिर बड़बड़ाई—"छिनाल कहीं की !"

सिर को झटककर उसने आंखें मूंद लीं। दिन-भर की स्कूल की बकझक से दिमाग वैसे ही खाली हो रहा था। शारीरिक थकान भी थी। वह उस समय पब्लिक लाइब्रेरी से होकर मिलिट्री लाइन्ज़ की तरफ का बड़ा राउंड लगाकर आई थी। निकली वह यह सोचकर थी कि घूमने से मन में कुछ ताज़गी आएगी, मगर घूमकर लौटते हुए मन पर अजब भारीपन छा गया था। क्वार्टर से आधा मील पहले उसे सूरज डूब गया था। तब कुछ क्षणों के लिए उसे अपना आप हल्का-हल्का-सा लगा था। हवा, पेड़ों के हिलते हुए पत्ते, और अस्तव्यस्त बिखरे हुए बादलों के टुकड़े, हर चीज़ में एक मादक स्पर्श का अनुभव हुआ था। सड़क पर फैली हुई संध्या की फीकी चांदनी धीरे-धीरे रंग पकड़ रही थी। वह साड़ी का पल्ला पीछे को कसकर कई कदम तेज़-तेज़ चल गई। मगर टांची के मोड़ तक पहुंचते-पहुंचते सारा उल्लास गायब हो गया। जब वह स्कूल के गेट के पास पहुंची तो अन्दर पैर रखने को जरा मन नहीं था। मगर उसने किसी तरह मन को बांधा और लोहे के गेट को हाथ

से धकेल दिया । गर्ल्ज़ हाई स्कूल की हेड मिस्ट्रेड रात को देर तक सड़कों पर अकेली कैसे घूम सकती थी ? बुझे हुए मन से वह क्वार्टर की सीढ़ियां चढ़ी तो यह माजरा सामने आ गया ।

उसने आंखें खोलीं तो काशी को उसी तरह खड़ी देखकर उसका गुस्सा और बढ़ गया । जैसे उसे आशा रही हो कि उसके आंखें बंद करने और खोलने के बीच काशी सामने से ओझल हो जाएगी ।

"अब खड़ी क्यों है ?" उसने डांटकर कहा, "चली जा यहां से ।"

काशी के चेहरे पर डांट का खास असर दिखाई नहीं दिया । वह बल्कि पास आकर फर्श पर बैठ गई ।

"बहनजी, हाथ जोड़ रही हूं, माफी दे दें ।" उसने मनोरमा के पैर पकड़ लिए । मनोरमा पैर हटाकर कुर्सी से उठ खड़ी हुई ।

"तुझसे कह दिया है, इस वक्त चली जा, मुझे तंग न कर ।" कह-कर वह खिड़की की तरफ चली गई । काशी भी उठकर खड़ी हो गई ।

"चाय बना दूं ?" उसने कहा, "घूमकर थक गई होंगी ।"

"तू जा, मुझे चाय-आय नहीं चाहिए ।"

"तो रोटी ला देती हूं ।"

मनोरमा कुछ न कहकर मुंह दूसरी तरफ किए रही ।

"बहनजी, मिन्नत कर रही हूं माफी दे दो ।"

मनोरमा चुप रही । सिर्फ उसने सिर को हाथ से दबा लिया ।

"सिर में दर्द है तो सिर दबा देता हूं ।" काशी अपने हाथ पल्ले से पोंछने लगी ।

"तुझसे कह दिया है जा, तू मेरा सिर क्यों खा रही है ?" मनोरमा ने ज़ोर से कहा । काशी चोट खाई-सी पीछे हट गई । पल-भर वह अवाक भाव से मनोरमा की तरफ देखती रही । फिर निकलकर बरामदे

"रात की बस से बापू को आना है। मां कहती थी कि सब लोग उसके आने पर ही रोटी खाएंगे।"

मनोरमा के सामने जैसे सभी कुछ स्पष्ट हो गया। तीन बरस के बाद अजुध्या आ रहा है, यह बात काशी उसे बता चुकी थी। तभी तो आज आईने के सामने जाने पर उसके मन में पाउडर और लिपस्टिक लगाने की इच्छा जागी थी। उसके बच्चे भी शायद आज इसीलिए खामोश थे। उनका बापू आ रहा था···बापू···जिसे उन्होंने तीन साल से नहीं देखा था, और जिसे शायद वे पहचानते भी नहीं थे। या शायद पहचानते थे —एक मोटी सख्त आवाज़ और तमाचे जड़नेवाले हाथों के रूप में···।

"जा, और अपनी मां को ऊपर भेज दे," उसने कुन्ती का कंधा थप-थपाकर कहा—"कहना, बहन जी बुला रही हैं।"

कुन्ती बाहें और कन्धे सिकोड़े हुए नीचे चली गई। थोड़ी ही देर में काशी ऊपर आ गई। उसकी आंखें लाल थीं और वह बार-बार अपनी नाक पल्ले से पोंछ रही थी।

"मैंने ज़रा-सी बात कह दी तो तू रोने लगी ?" मनोरमा ने उसे देखते ही शिकायत के स्वर में कहा।

"बहन जी, नौकर मालिक का रिश्ता ही ऐसा है !" काशी ने भी उत्तर शिकायत में ही दिया।

"ज़रा-सी बात कह दो तो तू रोने लगती है !" मनोरमा जैसे टूटी हुई चीज़ को जोड़ने लगी, "जा, अंदर गुसलखाने से हाथ-मुंह धो आ।"

मगर काशी नाक और आंखें पोंछती हुई वहीं खड़ी रही। मनोरमा एक हाथ से दूसरे हाथ की उंगलियां मलने लगी। "अजुध्या आज आ रहा है ?" उसने पूछा।

काशी ने सिर्फ सिर हिलाया।

"कुछ दिन रहेगा या जल्दी चला जाएगा ?"

"चिट्ठी में तो यही लिखा है कि ठेका उठाकर चला जाएगा।"

मनोरमा जानती थी कि अजुध्या की खानदानी ज़मीन पर सेब के कुछ पेड़ हैं, जिनका हर साल ठेका उठता है। पिछले साल काशी ने सवा सौ में ठेका दिया था और उससे पिछले साल डेढ़ सौ में। पिछले साल अजुध्या ने उसे बहुत सख्त चिट्ठी लिखी थी। वह समझता था कि वह ठेकेदारों से कुछ पैसे अलग से लेकर अपने पास रख लेती है। इसलिए इस बार काशी ने उसे लिख दिया था कि ठेका देने के लिए वह आप ही वहां आए; वह रुपये-पैसे के मामले में किसीकी बात सुनना नहीं चाहती। पांच बरस हुए, अजुध्या ने उसे छोड़कर दूसरी औरत कर ली थी और उसे लेकर पठानकोट में रहता था। वहीं उसने एक छोटी-सी दुकान कर रखी थी। काशी को वह खर्च के लिए एक पैसा भी नहीं भेजता था।

"सिर्फ ठेका देने के लिए ही पठानकोट से आ रहा है ?" मनोरमा ने ऐसे कहा जैसे सोच वह कुछ और ही रही हो, "उतने पैसे तो उसके आने-जाने में ही खर्च हो जाएंगे।"

"मैंने सोचा इसी बहाने एक बार यहां हो जाएगा, और बच्चों से मिल जाएगा !" काशी की आवाज़ फिर कुछ भीग गई, "और उसकी तसल्ली भी हो जाएगी कि आजकल इन सेबों का डेढ़ सौ कोई नहीं देता।"

"अजब आदमी है !" मनोरमा हमदर्दी के साथ बोली, "अगर सच-मुच तू कुछ पैसे रख ले तो भी क्या है ? आखिर तू उसीके बच्चों को पाल रही है। चाहिए तो यह कि हर महीने वह तुझे कुछ पैसे भेजे। उसकी बजाय वह इस तरह की बातें करता है।"

"बहन जी, मर्द के सामने किसीका बस चलता है !" काशी की आवाज़ और भीग गई।

"तो तू क्यों उससे नहीं कहती कि…?" कहते-कहते मनोरमा ने

बात बीच में ही रोक ली। उसे सहसा याद हो आया कि कुछ दिन हुए एक बार सुशील की चिट्ठी आने पर काशी उससे इसी तरह की बातें पूछती रही थी, और उसे अच्छा नहीं लगा था। काशी ने कई सवाल किए थे, कि बाबूजी, जब आप इतना कमाते हैं, तो उससे नौकरी क्यों कराते हैं? उनके अभी तक कोई बच्चा-अच्चा क्यों नहीं हुआ? और वह अपनी तनखाह अपने ही पास रखती है या बाबूजी को भी कुछ भेजती है? तब उसने काशी की बातों को हंसकर टाल दिया था, मगर अपने अंदर उसे महसूस हुआ था कि उसके मन की कोई बहुत कमज़ोर सतह छू गई है। उसका मन कई दिन उदास रहा था।

"रोटी ले आऊं?" काशी ने आवाज़ को थोड़ा सहेजकर पूछा।

"नहीं, मुझे अभी भूख नहीं है," मनोरमा ने मुलायम स्वर में कहा जिससे काशी को विश्वास हो जाए कि अब वह बिलकुल नाराज़ नहीं है, "जब भूख लगेगी, मैं खुद निकालकर खा लूंगी। तू जाकर अपने यहां का काम देख। अजुध्या आनेवाला ही होगा। आखिरी बस नौ बजे पहुंचती है।"

काशी चली गई, तो भी मनोरमा खंभे को पकड़े हुए काफी देर तक खड़ी रही। हवा तेज़ हो गई थी। उसे अपने मन में बेचैनी महसूस होने लगी। उसे वे दिन याद आए, जब ब्याह के बाद वह और सुशील साथ-साथ पहाड़ों पर घूमा करते थे। उन दिनों लगता था कि उस एक्सटेसी के सामने दुनिया की हर चीज़ हेच है। सुशील उसका हाथ भी छू लेता तो शरीर में एक तूफान उठ आता था। रोयां-रोयां उस तूफान में बह चलता था। देवदार के जंगलों की सारी सरसराहट जैसे शरीर में भर जाती थी और लगता था कि वह खुद भी कुछ पलों में उसी तरह लह-लहा उठेगी। पारस्परिक घनिष्ठता के अन्यतम क्षणों के बाद जब सुशील उससे दूर हटने लगता तो वह उसे और भी निकट कर लेना चाहती थी।

वह कल्पना में अपने को एक छोटे-से बच्चे को उठाए हुए देखती और पुलकित हो उठती। उसे आश्चर्य होता कि क्या सचमुच एक हिलती-डुलती काया उसके शरीर के अंदर से जन्म ले सकती है। एक बार उसने सुशील से कहा था कि वह इस आश्चर्य को अपने अंदर अनुभव करके देखना चाहती है। परन्तु सुशील इसके हक में नहीं था। वह नहीं चाहता था कि अभी कुछ वर्ष वे एक बच्चे को घर में आने दें। उससे एक तो उसके फिगर के खराब हो जाने का डर था, फिर उसकी नौकरी का भी सवाल था। सुशील नहीं चाहता था कि वह अपनी लगी हुई नौकरी छोड़कर बस घर-गृहस्थी के काम लायक ही हो रहे। साल-छः महीने में उसे अपनी बहन उम्मी का ब्याह करना था। उसके दो छोटे भाई कालेज में पढ़ रहे थे। उन दिनों उनके लिए एक-एक पैसे की कीमत थी। वह कम से कम पांच साल ऐहतियात से चलना चाहता था। हज़ार चाहते हुए भी वह सुशील के सामने हठ नहीं कर सकी। मगर जब कभी सुशील के हाथ उसके शरीर को सहला रहे होते तो जैसे एक अज्ञात शिशु उसकी बांहों में आने के लिए मचलने लगता। वह जैसे उसकी किलकारियां सुनती और उसके कोमल शरीर के स्पर्श का अनुभव करती। ऐसे क्षणों में कई बार सुशील का चेहरा उसके लिए बच्चे का चेहरा बन जाता और वह उसे अच्छी तरह साथ सटा लेती। उसका मन होता उसे थपथपाए और लोरियां दे।

सुशील की चिट्ठी आए इस बार बहुत दिन हो गए थे। उसने उसे लिखा भी था कि वह जल्दी जवाब दिया करे, क्योंकि उसका पत्र न आने से उसके लिए अपना अकेलापन असह्य हो जाता है। वह कई दिनों से सोच रही थी कि सुशील को दूसरा पत्र लिखे, मगर अभिमान उसे रोकता था। क्यों, सुशील को इतनी फुर्सत भी नहीं मिलती थी कि उसे कुछ पंक्तियां लिख दे?

हवा का तेज़ झोंका आया। देवदारों की सरसराहट घाटियां पार करती हुई दूर के आकाश में जाकर खो गई। सामने की पहाड़ी के साथ-साथ रोशनी के दो दायरे रेंगते हुए आ रहे थे। संभवतः पठानकोट से आखिरी बस आ रही थी। चांदनी में गेट की मोटी सलाखें चमक रही थीं। हवा धक्के दे-देकर जैसे गेट का ताला तोड़ देना चाहती थी। मनोरमा ने एक लंबी सांस ली और अंदर को चल दी। उसे महसूस हुआ कि वह बहुत-बहुत अकेली है।

अगली शाम को मनोरमा घूमकर लौटी तो कम्पाउण्ड में दाखिल होते ही ठिठक गई। काशी के क्वार्टर में बहुत शोर सुनाई दे रहा था। अजुध्या ज़ोर-ज़ोर से गाली दे रहा था और काशी को पीट रहा था। काशी गला फाड़-फाड़कर रो रही थी। मनोरमा गुस्से से भन्ना उठी। कमेटी के नियम के मुताबिक किसी मर्द को स्कूल की चारदीवारी में रात को ठहरने की इजाज़त नहीं थी। उसने खास रियायत करके उसे वहां ठहरने की इजाज़त दे दी थी। और वह आदमी था कि वहां इस तरह की हरकत कर रहा था! मनोरमा का ध्यान काशी को पड़ती हुई मार की तरफ नहीं गया, इसी तरफ गया कि जो कुछ हो रहा है, उसमें स्कूल की बदनामी है, और स्कूल की बदनामी का मतलब है उसकी बदनामी...।

वह तेज़ी से अपने क्वार्टर की सीढ़ियां चढ़ गई। खट-खट-खट उसके सैंडिल लकड़ी के ज़ीने पर आवाज़ कर उठे। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। काशी को बुलाकर कहे कि अजुध्या को फौरन वहां से भेज दे? या अजुध्या को बुलाकर डांट दे और कह दे कि वह सुबह होने तक वहां से चला जाए?

बरामदे में पैर रखते ही उसने देखा कि कुन्ती एक कोने में सहमी-सी बैठी है और डरी हुई आंखों से नीचे की तरफ देख रही है। जैसे

उसकी मां को पड़ती हुई मार की चोट कुछ हद तक उसे भी लग रही हो। मनोरमा सोच नहीं सकी कि वह उस समय उसके क्वार्टर में क्यों बैठी है।

"क्या बात है ?" उसने अपना गुस्सा दबाए हुए पूछा।

"मां ने कहा था कि आपको रोटी खिला दूं...।" कुन्ती उसकी तरफ इस तरह डरी हुई आंखों से देखने लगी, जैसे उसे खयाल हो कि बहनजी अभी उसे बांह से पकड़कर पीटने लगेंगी।

"तू रोटी खिलाएगी ?"

कुन्ती ने उसी डरे हुए भाव से सिर हिलाया।

"तुम्हारे क्वार्टर में यह क्या हो रहा है ?" मनोरमा ने ऐसे पूछा जैसे जो हो रहा था, उसके लिए कुन्ती भी उत्तरदायी हो। कुन्ती के ओठ फड़कने लगे और दो बूंदें आंखों से नीचे बह आईं।

"वह किस बात पर तेरी मां को पीट रहा है ?" मनोरमा ने फिर पूछा।

कुन्ती ने कमीज़ से आंखें पोंछीं और अपनी रुलाई दबाती हुई बोली, "उसने मां के ट्रंक से सारे पैसे निकाल लिए हैं। मां ने उसका हाथ रोका, तो उसे पीटने लगा।"

"इस आदमी का दिमाग खराब है !" मनोरमा गुस्से से भड़क उठी। "अभी निकालकर यहां से बाहर करूंगी तो होश दुरुस्त हो जाएंगे।"

कुन्ती कुछ देर सुबकती रही। फिर बोली, "वह कहता है कि मां ने ठेकेदारों से अलग से पैसे ले-लेकर अपने पास जमा किए हैं। इस बार उसने दो सौ में ठेका दिया है। मां के पास अपने सत्तर रुपये थे। वे सब भी उसने ले लिए हैं।"

कुन्ती के भाव में कुछ ऐसी दयनीयता थी कि मनोरमा ने उसके मैले कपड़ों की चिन्ता किए बिना उसे अपने से सटा लिया।

"रोती क्यों है ?" उसने उसकी पीठ सहलाते हुए कहा, "मैं अभी उससे तेरी मां के रुपये ले दूंगी। चल अंदर।"

रसोईघर में जाकर मनोरमा ने खुद कुन्ती का मुंह धो दिया और मोढ़ा लेकर बैठ गई। कुन्ती ने थाली में रोटी रख दी, तो वह चुपचाप खाने लगी। वही खाना काशी ने बनाया होता, तो वह गुस्से से चिल्ला उठती। सब चपातियों की सूरतें अलग-अलग थीं, और वे आधी कच्ची और आधी जली हुई थीं। दाल के दाने पानी से अलग थे। मगर उस समय वह मशीनी ढंग से रोटी के कौर तोड़ती और दाल में भिगोकर निगलती रही। उसी तरह जैसे रोज़ दफ्तर में बैठकर कागज़ों पर दस्तखत करती थी, या अध्यापिकाओं की शिकायतें सुनकर उन्हें जवाब दिया करती थी। कुन्ती ने बिना पूछे एक और रोटी उसकी थाली में डाल दी तो वह चौंक गई।

"नहीं, और नहीं।" कहते हुए उसने इस तरह हाथ बढ़ा दिया, जैसे रोटी अभी थाली में पहुंची न हो। फिर अनमने भाव से छोटे-छोटे कौर तोड़ने लगी।

नीचे शोर बन्द हो गया। कुछ देर बाद गेट के खुलने और बन्द होने की आवाज़ सुनाई दी। उसने अंदाज़ा लगाया कि अजुध्या कहीं बाहर जा रहा है। कुन्ती रोटीवाला डिब्बा बंद कर रही थी। वह उससे बोली, "नीचे जाकर मां से कह देना कि गेट को वक्त से ताला लगा दे। रात-भर गेट खुला ही न रहे।"

कुन्ती चुपचाप सिर हिलाकर काम करती रही।

"और कहना कि अभी ऊपर हो जाए।"

उसका स्वर फिर रूखा हो गया था। कुन्ती ने एक बार इस तरह उसकी तरफ देखा, जैसे वह उसकी किताब का एक मुश्किल सबक हो, जो बहुत कोशिश करने पर भी समझ में न आता हो। फिर सिर हिला-

कर काम में लग गई।

रात को काफी देर तक काशी मनोरमा के पास बैठी रही। उसे इस बात की उतनी शिकायत नहीं थी कि अजुध्या ने उसके ट्रंक से उसके रुपये निकाल लिए। ज़्यादा शिकायत उसे इस बात की थी कि अजुध्या तीन बरस बाद आया भी तो बच्चों के लिए कुछ लेकर नहीं आया। वह बताती रही कि उसकी सौत ने किसी संत से वशीकरण ले रखा है। तभी अजुध्या उसकी कोई बात नहीं टालता। वह जिस ज्योतिषी से पूछने गई थी, उसने उसे बताया था कि अभी सात साल तक वह वशीकरण नहीं टूट सकता। मगर उसने यह भी कहा था कि एक दिन ऐसा ज़रूर आएगा, जब उसकी सौत के बच्चे उसके बच्चों का जूठा खाएंगे और उनके उतरे हुए कपड़े पहनेंगे। वह उसी दिन की आस लगाए हुए जी रही थी।

मनोरमा उसकी बातें सुनती हुई भी नहीं सुन रही थी। उसके मन में रह-रहकर यह बात कौंध जाती थी कि सुशील की चिट्ठी नहीं आई··· उसकी चिट्ठी गए महीने के करीब हो गया, मगर सुशील ने जवाब नहीं दिया···। उसके बालों की एक लट उड़कर माथे पर आ गई थी। वह हल्का-हल्का स्पर्श शरीर में विचित्र-सी सिहरन भर रहा था। कुछ क्षणों के लिए तो वह भूल गई कि काशी उसके सामने बैठी है और बातें कर रही है। माथे की लट हिलती तो उसे लगता कि एक बच्चे के कोमल रोयों को छू रही है। उसे उन दिनों की याद आई, जब सुशील की उंगलियां देर-देर तक उसके सिर के कोमल बालों से खेलती रहती थीं, और बार-बार उसके ओठ उसके शरीर के हर धड़कते हुए भाग पर झुक जाते थे···। इस बार सुशील ने चिट्ठी लिखने में न जाने क्यों इतने दिन लगा दिए थे। हर रोज़ डाक में कितनी-कितनी चिट्ठियां आती थीं। मगर सारी डाक हेड मिस्ट्रेट के नाम की ही होती थी। कई दिनों से मनोरमा सचदेव से नाम की कोई भी चिट्ठी नहीं आई थी····। वह आते

हुए सुशील से कह आई थी कि जल्द ही उसके लिए गर्म कोट का कपड़ा भेजेगी। उम्मी के लिए भी उसने एक शाल भेजने को कहा था। सुशील कहीं इसीलिए तो नाराज़ नहीं कि वह दोनों में से कोई भी चीज़ नहीं भेज पाई?

काशी उठकर जाने लगी तो मनोरमा को फिर अपने अकेलेपन के एहसास ने घेर लिया। देवदार के जंगल की घनी सरसराहट, दूर की घाटी में रावी के पानी पर चमकता हुआ चांद और उसकी उनींदी आंखें—इन सबमें जैसे कोई अदृश्य सूत्र था। काशी बरामदा पार कर गई, तो उसने उसे वापस बुला लिया और कहा कि वह गेट को ठीक से ताला लगाकर सोए और जाकर कुन्ती को उसके पास भेज दे, आज वह वहां उसके पास ही सो रहेगी।

आधी रात तक उसे नींद नहीं आई। खिड़की से दूर तक धुला-निखरा आकाश दिखाई देता था। हवा का ज़रा-सा झोंका आता तो चीड़ और देवदार की पंक्तियां तरह-तरह की नृत्य-मुद्राओं में बांहें हिलाने लगतीं। पत्तों और टहनियों पर से फिसलकर आती हुई हवा का शब्द शरीर को इस तरह रोमांचित करता कि शरीर में एक जड़ता-सी छा जाती। कुछ देर वह खिड़की की सिल पर सिर रखे चारपाई पर बैठी रही। क्षण-भर के लिए आंखें मुंद जातीं तो खिड़की की सिल सुशील के वक्ष का रूप ले लेती। उसे महसूस होता कि हवा उसे दूर, बहुत दूर लिए जा रही है—चीड़-देवदार के जंगल और रावी के पानी के उस तरफ...। जब वह खिड़की के पास से हटकर चारपाई पर लेटी, तो रोशनदान से छनकर आता हुआ चांदनी का एक चौकोर टुकड़ा साथ की चारपाई पर सोई हुई कुन्ती के चेहरे पर पड़ रहा था। मनोरमा चौंक गई। कुन्ती पहले कभी उसे उतनी सुन्दर नहीं लगी थी। उसके पतले-पतले ओठ आम की लाल-लाल नन्हीं पत्तियों की तरह खुले थे। उसे और पास से देखने के लिए वह कुहनियों के बल उसकी चारपाई पर झुक गई। फिर हठात्

उसने उसे चूम लिया। कुन्ती सोई-सोई एक बार सिहर गई।

मनोरमा तकिए पर सिर रखे देर तक छत की तरफ देखती रही। जब हल्की-हल्की नींद आंखों पर छाने लगी, तो वह गेट के खुलने और बंद होने की आवाज़ से चौंक गई। कुछ ही देर में काशी के क्वार्टर से अजुध्या के बड़बड़ाने की आवाज सुनाई देने लगी। वह उस समय शराब पिए था। मनोरमा के शरीर में फिर एक बार गुस्से की झुरझुरी उठी। उसने अच्छी तरह अपने को कम्बलों में लपेटकर उस आवाज़ को भुला देने का प्रयत्न किया। मगर नींद आ जाने पर भी वह आवाज कानों में गूंजती रही...।

दो दिन बाद अजुध्या चला गया तो मनोरमा ने आराम की सांस ली। उसे रह-रहकर लगता था कि किसी भी क्षण वह अपने पर काबू खो देगी, और उस आदमी को चपरासी से धक्के दिलाकर स्कूल के कम्पाउंड से निकलवा देगी। वह आदमी शकल से ही कमीना नज़र आता था। उसके बड़े-बड़े मैले दांत, काले ओठ और खूंखार जानवर जैसी चुभती हुई आंखें देखकर उसे लगता था कि उस आदमी को ऐसी शक्ल के लिए ही उम्र-कैद की सज़ा होनी चाहिए। उसके चले जाने के बाद उसका मन काफी हल्का हो गया। दफ्तर के कुछ काम जो वह कई दिनों से टाल रही थी, उसने उसी दिन बैठकर पूरे कर दिए। उस दिन शाम की डाक से सुशील की चिट्ठी भी आ गई।

उसने चिट्ठी दफ्तर में नहीं खोली। क्लर्क से और चिट्ठियों की डिक्टेशन अगले दिन लेने के लिए कहकर वह क्वार्टर में चली गई। अपनी चारपाई पर बैठकर उसने पेपर कटर से धीरे-धीरे चिट्ठी खोली, जैसे उसे चोट न पहुंचाना चाहती हो। चिट्ठी दफ्तर के कागज़ पर बहुत जल्दी-जल्दी लिखी गई थी। मनोरमा को यह अच्छा नहीं लगा, मगर फिर भी उसने एक-एक पंक्ति आग्रह के साथ पढ़ी। सुशील ने लिखा था

कि जल्द ही एक जगह उम्मी की सगाई की बात तय हो रही है। लड़का अच्छे पैसे कमाता है, और सभी ने यह रिश्ता पसंद किया है। हो सके तो वह उम्मी की शाल जल्दी भेज दे। अब उम्मी के ब्याह के लिए भी उन लोगों को कुछ पैसे बचाकर रखने चाहिए। आखिर में उससे अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखने को कहा था। मधुर आलिंगन तथा अनेकानेक चुम्बनों के साथ चिट्ठी समाप्त हुई थी।

मनोरमा काफी देर चिट्ठी हाथ में लिए बैठी रही। उसे चिट्ठी पढ़कर मधुर आलिंगन और अनेकानेक चुम्बनों का ज़रा भी स्पर्श प्राप्त नहीं हुआ। उसे ऐसे महसूस हुआ जैसे वह एक चश्मे से पानी पीने के लिए झुकी हो और उसके ओठ पीले रेत से छूकर रह गए हों। चिट्ठी उसने ड्राअर में डाल दी और दफ्तर में लौट गई।

रात को खाना खाने के बाद वह चिट्ठी का जवाब लिखने बैठी। मगर कलम हाथ में लेते ही दिमाग जैसे बिलकुल खाली हो गया। उसे लगा कि उसके पास लिखने के लिए कुछ भी नहीं। पहली पंक्ति लिखकर वह देर तक कागज़ को नाखून से कुरेदती रही। आखिर बहुत सोचकर उसने कुछ पंक्तियां लिखीं। पढ़ने पर उसे लगा कि उस चिट्ठी में उन चिट्ठियों से कोई खास फर्क नहीं, जो वह दफ्तर में बैठकर क्लर्क को डिक्टेट कराया करती है। चिट्ठी में बात इतनी ही थी कि उसे इस बात का बहुत अफसोस है कि वह शाल और कोट का कपड़ा अभी तक नहीं भेज पाई। बहुत जल्द ही वह ये दोनों चीज़ें भेज देगी। और अंत में उसकी ओर से मधुर आलिंगन और अनेकानेक चुम्बन...।

रात को वह देर तक सोचती रही कि कौन-कौन-सा खर्च कम करके वह चालीस-पचास रुपया महीना बचा सकती है। दूध पीना बन्द कर दे? कपड़े खुद धोया करे? काशी से काम छुड़ाकर रोटी खुद बनाया करे? ज़्यादा खर्च तो काशी की वजह से ही होता था। वह चीज़ें मांग-

कनियां लगी थीं और वह ओट कर अपनी उंगलियां दोपट्टे से पोंछ रही थी। मनोरमा एकदम आपे से बाहर हो गई। पास जाकर उसने उसे चोटी से पकड़ लिया।

"चोट्टी !" उसने चिल्लाकर कहा, "मैं इसीलिए सूखी सब्ज़ी खाती हूं कि तू कच्चा घी हज़म किया करे ? शरम नहीं आती कमज़ात ? जा, अभी निकल जा यहां से। मैं आज से तेरी सूरत भी नहीं देखना चाहती।" उसने उसकी पीठ पर एक लात जमा दी। काशी औंधे मुंह गिरने को हो गई, मगर अपने हाथों के सहारे संभल गई। पल-भर वह दर्द से आंखें मूंदे रही। फिर उसने मनोरमा के पैर पकड़ लिए। मुंह से उससे कुछ नहीं कहा गया।

"मैं चौबीस घंटे का नोटिस दे रही हूं," मनोरमा ने पैर छुड़ाते हुए कहा, "कल इस वक्त तक स्कूल का क्वार्टर खाली हो जाए। सुबह ही क्लर्क तेरा हिसाब भी कर देगा। उसके बाद कम्पाउंड में कदम भी रखा तो···।" और वह हटकर वहां से जाने लगी। काशी ने बढ़कर फिर उसके पैर पकड़ लिए।

"बहनजी, पैर छू रही हूं माफी दे दो," उसने जैसे मुश्किल से कहा। मनोरमा ने फिर भी पैर झटके से छुड़ा लिए। उसका एक पैर पीछे पड़ी हुई चायदानी से जा लगा। चायदानी टूट गई। बिखरते हुए टुकड़ों की आवाज़ ने क्षण-भर के लिए दोनों को स्तब्ध कर दिया। फिर मनोरमा ने अपना निचला ओठ काटा और दनदनाती हुई वहां से निकल गई। कमरे में जाकर उसने माथे पर बाम लगाया और सिर-मुंह लपेट-कर लेट गई।

शाम की डाक से फिर सुशील की चिट्ठी मिली। उसमें वही सब बातें लिखी थीं। उम्मी की सगाई कर दी गई थी। पिछले इतवार वे लोग उस लड़के को साथ लेकर पिकनिक पर गए थे। उम्मी ने एक कोने

में खुद अपने शाल के लिए आग्रह के साथ लिखा था। साथ यह भी कि भाभी को सब लोग बहुत-बहुत याद करते हैं। पिकनिक के दिन तो उन्हें उसकी बहुत ही याद आई''''।

चिट्ठी पढ़ने के बाद वह बड़े राउंड पर घूमने निकल गई। उसके मन में बहुत झुंझलाहट भर गई थी। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि वह झुंझलाहट काशी पर है, अपने पर, या सुशील पर। न जाने क्यों उसे लगा कि सड़क पर कंकड़-पत्थर पहले से कहीं ज्यादा हैं, और गोल सड़क न जाने कितनी बड़ी हो गई है। रास्ते में दो बार उसे थककर पत्थर पर बैठना पड़ा। घर से एक-डेढ़ फरलांग पहले उसकी चप्पल टूट गई। वह रास्ता बहुत मुश्किल से कटा। उसे लगा, न जाने कितनी मुद्दत से वह घिसटती हुई उस गोलाई में चल रही है और आगे भी न जाने कब तक उसी तरह चलती जाएगी'''।

गेट के पास पहुंचकर सुबह की घटना फिर उसके दिमाग में ताजा हो आई। काशी के क्वार्टर में फिर खामोशी छाई थी। मनोरमा को एक क्षण के लिए ऐसा मालूम हुआ कि काशी क्वार्टर खाली करके चली गई है, और उस बड़े कम्पाउंड में उस समय वह बिलकुल अकेली है। उसका मन सिहर गया। उसने कुन्ती को आवाज़ दी। कुन्ती लालटेन लिए हुए अपने क्वार्टर से बाहर आ गई।

"तेरी मां कहां है ?" मनोरमा ने पूछा।

"अन्दर है," और कुन्ती ने एक बार अन्दर की तरफ देख लिया।

"क्या कर रही है ?"

"कुछ नहीं कर रही। बैठी है।"

मनोरमा ने देखा काशी का क्वार्टर काफी खस्ता हालत में है। दरवाज़े का चौखट काफी कमज़ोर पड़ गया था, जिससे दरवाज़ा निकल-कर बाहर आ जाने को था। रोज़ वह उस क्वार्टर के सामने से कई-कई

बार गुजरती थी, रोज ही उस दरवाजे को देखती थी, मगर पहले कभी उसका ध्यान उसपर नहीं रुका था।

"इस क्वार्टर में काफी मरम्मत होनेवाली है," कहकर वह जैसे क्वार्टर की हालत का मुआइना करती हुई ही अंदर चली गई। काशी उसे देखते ही उठकर उसके पास आ गई। मनोरमा ने एक बार उसकी तरफ देख लिया मगर उससे कोई बात नहीं की। क्वार्टर की दीवारें पीली पड़कर अब स्याह होने लगी थीं। एक रोशनदान भी दीवार से निकलकर नीचे गिर आने को था। छत में चारों तरफ मकड़ी के जाले लगे थे जो आपस में मिलकर एक बड़े-से चंदोवे का रूप लिए थे। कमरे में जो थोड़ा-बहुत सामान था, वह इधर-उधर अस्त-व्यस्त पड़ा था। एक तरफ तीन बच्चे एक ही थाली में रोटी खा रहे थे। वही पानी जैसी दाल थी जो एक दिन कुन्ती ने उसे बनाकर खिलाई थी और वही अलग-अलग सूरतोंवाली खुश्क रोटियां...। उसे देखकर बच्चों के हाथ और मुंह चलने बंद हो गए। सबसे छोटा लड़का जो करीब चार बरस का था, लोई में लिपटा हुआ एक कोने में लेटा था। उसकी आंखें मनोरमा के साथ-साथ कमरे में घूम रही थीं।

"परसू को क्या हुआ है ? बीमार है ?" मनोरमा ने बिना काशी की तरफ देखे जैसे दीवार से पूछा और बच्चे के पास चली गई। परसू अपने पैर के अंगूठों की सीध में देखने लगा।

"इसे सूखा हो गया है," काशी ने धीरे-से कहा।

मनोरमा ने बच्चे के गालों को सहलाया और उसके सिर पर हाथ फेर दिया।

"डाक्टर को दिखाया है ?" उसने पूछा।

"दिखाया था," काशी ने कहा। "उसने दस टीके बताए हैं। दो-दो रुपये का एक टीका आता है।" बोलते-बोलते उसका गला भर आया।

"लगवाए नहीं ?" अब मनोरमा ने उसकी तरफ देखा।

"कैसे लगवाती ?" काशी की आंखें ज़मीन की तरफ झुक गईं—"जितने रुपये थे वे सब तो वह निकालकर ले गया था।···मैं इसे कांसे की कटोरी मलती हूं। कहते हैं उससे ठीक हो जाता है।"

बच्चा बिटर-बिटर उन दोनों की तरफ देख रहा था। मनोरमा ने एक बार फिर उसके गाल को सहला दिया और बाहर को चल दी। कुन्ती दहलीज़ के पास खड़ी थी। वह रास्ता छोड़कर हट गई।

"इस क्वार्टर में अभी सफेदी होनी चाहिए," मनोरमा ने चलते-चलते कहा, "यहां की हवा में तो अच्छा-भला आदमी बीमार हो सकता है।"

काशी के क्वार्टर से निकलकर मनोरमा धीरे-धीरे अपने क्वार्टर का ज़ीना चढ़ी। ठक-ठक की गूंजती हुई आवाज़, अकेला बरामदा, कमरा। कमरे में जो चीज़ें वह बिखरी हुई छोड़ गई थी, वे अब करीने से रखी हुई थीं। बीच की मेज़ पर रोटी की थाली ढकी रखी थी। केतली में पानी भरकर स्टोव पर रखा था। कोट उतारकर शाल ओढ़ते हुए उसने बरामदे में पैरों की आवाज़ सुनी। काशी आकर चुपचाप दरवाजे के पास खड़ी हो गई।

"क्या बात है ?" मनोरमा ने रूखी आवाज़ में पूछा।

"रोटी खिलाने आई हूं," काशी ने धीमी ठहरी हुई आवाज़ में कहा, "चाय का पानी भी तैयार है। कहें तो पहले चाय बना दूं।"

मनोरमा ने एक बार उसकी तरफ देखा और आंखें हटा लीं। काशी ने कमरे में आकर प्लग का बटन दबा दिया। पानी आवाज़ करने लगा।

मनोरमा एक किताब लेकर बैठ गई। थोड़ी ही देर में काशी चाय की प्याली बनाकर उसके पास ले आई। मनोरमा ने किताब बंद कर दी और हाथ बढ़ाकर प्याली ले ली। काशी के ओठों पर रूखी-सी मुस्कराहट आ गई।

"बहनजी, कभी नौकर से गलती हो जाए तो इतना गुस्सा नहीं करते," उसने कहा।

"रहने दे ये सब बातें," मनोरमा ने झिड़ककर कहा, "आदमी से एक बार बात कही जाए तो उसे लग जाती है। मगर तेरे जैसे लोग भी होते हैं जिन्हें बात कभी छूती ही नहीं। बच्चे सूखी दाल-रोटी खाकर रहते हैं और मां को खाने को कच्चा घी चाहिए। ऐसी मां किसीने नहीं देखी होगी।"

काशी का चेहरा ऐसे हो गया जैसे उसे किसी मर्म से चीर दिया गया हो। उसकी आंखों में आंसू उमड़ आए।

"बहनजी, इन बच्चों को न पालना होता तो मैं आपको जीती नज़र न आती," उसने कहा, "एक अभागा भूखे पेट से जन्मा था, वह सूखे-से पड़ा है। अब दूसरा भी उसी तरह आएगा तो उसे जाने क्या होगा?"

मनोरमा को जैसे किसीने आसमान से धकेल दिया। चाय के घूंट भरते हुए भी उसके शरीर में कई ठंडी सिरहनें भर गईं। वह क्षण-भर अवाक् काशी की ओर देखती रही।

"तेरे पैर फिर भारी हैं?" उसने ऐसे पूछा जैसे किसी भी तरह उसे इस बात पर विश्वास न आ रहा हो।

काशी के चेहरे पर जो भाव आया उसमें नई ब्याहता की-सी लज्जा भी थी और एक हताश व्यक्ति की झुंझलाहट भी। उसने सिर हिलाया और एक ठंडी सांस लेकर दरवाज़े की तरफ देखने लगी। मनोरमा को पल-भर के लिए लगा कि अजुध्या उसके सामने खड़ा मुस्करा रहा है। उसने चाय की प्याली खाली करके रख दी। काशी प्याली उठाकर बाहर ले गई। मनोरमा को लगने लगा कि उसकी बांहें ठंडी होती जा रही हैं। उसने शाल को पूरा खोलकर अच्छी तरह लपेट लिया। काशी

बाहर से लौट गई।

"रोटी कब तक खाएंगी ?" उसने पूछा।

मगर मनोरमा ने उसे जवाब देने की बजाय उससे पूछा, "डाक्टर ने कहा था कि दस टीके लगाने से बच्चा ठीक हो जाएगा ?"

काशी ने खामोश रहकर सिर हिलाया और दूसरी तरफ देखने लगी।

"मैं तुझे बीस रुपये देती हूं," मनोरमा ने कुर्सी से उठते हुए कहा, "कल जाकर टीके ले आना।"

उसने ट्रंक से अपना बटुआ निकाल लिया, जिसमें पहली तारीख को चालीस रुपये गिनकर रखे थे। बीस रुपये निकालकर उसने मेज़ पर रख दिए और बाकी बीस बड़े पर्स में डाल लिए। उसे डर लग रहा था कि उसकी बांहें इस कदर ठंडी क्यों हो गई हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि उसका जिस्म भी अन्दर से खोखला हो गया है और धीरे-धीरे उसकी भी वही हालत होती जा रही है जो आज...?

रोटी खाकर वह देर तक बरामदे में कुर्सी डालकर बैठी रही। उसे महसूस हो रहा था कि उसके सारे शरीर में एक अभाव की सिहरन दौड़ रही है। यह वह ठीक से नहीं समझ पा रही थी कि वह अभाव क्या है और क्यों शरीर के हर रोम में और लहू के हर कण में उसकी सिहरन का अनुभव होता है। जैसे उस अभाव का संबंध किसी बाहरी वस्तु से न होकर अपने से ही था, जैसे उसी वजह से उसे अपना-आप बिलकुल खाली लगता था। हवा बहुत तेज़ थी और देवदार का जंगल जैसे सिर धुनता हुआ कराह रहा था। हुआं...हुआं...हुआं...हवा के झोंके उमड़ती हुई लहरों की तरह शरीर को घेर लेते थे और शरीर उनमें बेबस-सा हो जाता था। उसने शाल को कसकर लपेट लिया। लोहे का गेट हवा के धक्के खाता हुआ आवाज़ कर रहा था। पल-भर के लिए

उसकी आंखें मुंद गईं, तो उसे लगा कि अजुध्या अपने स्याह ओठ खोले उसके सामने खड़ा मुस्करा रहा है, और लोहे का गेट चीखता हुआ धीरे-धीरे खुल रहा है। उसने सिहरकर आंखें खोल लीं और अपने माथे को छुआ। माथा बर्फ की तरह ठण्डा था। वह कुर्सी से उठ खड़ी हुई। उठते हुए, शाल कंधे से उतर गया और साड़ी का पल्ला हवा में फड़फड़ाने लगा। बालों की कई लटें उड़कर सामने आ गईं और माथे को सहलाने लगीं।

"कुन्ती !" उसने कमज़ोर-सी आवाज़ दी। आवाज़ हवा के समुद्र में कागज़ की नाव की तरह डूब गई।

"कुन्ती !" उसने फिर ज़ोर से आवाज़ दी। इस बार काशी अपने क्वार्टर से निकल आई।

"कुन्ती जाग रही हो, तो उसे मेरे पास भेज दे। आज वह यहीं सो जाएगी।" कहते हुए मनोरमा को महसूस हुआ कि वह किस हद तक काशी और उसके बच्चों पर निर्भर करती है, और उन लोगों का पास होना उसके लिए किस कदर ज़रूरी है।

"कुन्ती सो गई है, मगर मैं अभी जगाकर भेज देती हूं," कहकर काशी अपने क्वार्टर में जाने लगी।

"सो गई है तो रहने दे। जगाकर भेजने की ज़रूरत नहीं," कहकर मनोरमा बरामदे से कमरे में आ गई। कमरे में आकर उसने दरवाज़ा इस तरह बन्द किया, जैसे हवा एक ऐसा व्यक्ति हो जिसे वह अन्दर आने से रोकना चाहती हो। वह अपने में बहुत कमज़ोरी महसूस कर रही थी। अच्छी तरह ओढ़कर वह बिस्तर पर लेट गई। आंखें छत की कड़ियों पर से फिसलने लगीं। वह आंखें बंद नहीं करना चाहती थी। जैसे उसे डर था कि आंखें बंद करते ही वे मुस्कराते हुए स्याह ओठ फिर सामने आ

को चिट्ठी में क्या-क्या लिखेगी। क्या उसे लिख दे कि वहां अकेली रहने में उसे डर लगता है और वह उसके पास आ जाना चाहती है? और ...और भी जो इतना कुछ वह महसूस करती थी, क्या वह उसे शब्दों में लिख पाएगी? यह बात वह सुशील को समझा सकेगी कि अपना आप उसे बिलकुल खाली-खाली-सा लगता है, और वह अपने अभाव को भरने के लिए उससे कुछ चाहती है......वह कुछ जो उसके आसपास हंसता, रोता और किलकारियां मारता रहे...।

माथे पर आई हुई लटें उसने हटाई नहीं थीं। वह हल्का-हल्का स्पर्श उसकी चेतना में उतर रहा था। कुछ ही देर में वह महसूस करने लगी कि साथ की चारपाई पर एक नन्हा-सा बच्चा सोया है, उसके नन्हे-नन्हे ओठ आम की पत्तियों की तरह खुले हैं, और सिर के कोमल बाल उड़कर मुंह पर आ रहे हैं। वह कुहनी के बल होकर उस बच्चे को चूमने के लिए झुक गई। चारपाई के बान की एक फांस उसके ओठों में गड़ गई। मगर वह आंखें मूंदे कई क्षण उसी तरह झुकी रही।

गुनाहे बेलज्जत

किसीने काउण्टर के पास जाकर सरदार सुन्दरसिंह के कान में कहा कि पुलीस-गाड़ी सुन्दरी और उसकी बहन को लिए हुए सिविल लाइन्ज़ में घूम रही है, तो उसका मुंह लाल हो गया, हाथ कांप गया और पेंसिल हाथ से गिर गई।

यह बात सुबह से सुनी जा रही थी कि सुन्दरी पुलीस को उन सब लोगों के पते-ठिकाने बता रही है जिन-जिनके घर उसे और उसकी बहन शम्मी को ले जाया गया था। कुछ बड़े-बड़े आसामियों की गिरफ्तारियां हो चुकी थीं जिनमें एक मैजिस्ट्रेट का भाई और एक पुलिस इंस्पेक्टर भी था। फिर भी सरदार सुन्दरसिंह का दिल कह रहा था कि उसकी गिरफ्तारी नहीं हो सकती। जो लमहे उसने सुन्दरी के साथ बिताए थे, वे उसकी ज़िदगी के सबसे खुशगवार लमहे थे। क्या ज़िंदगी ऐसी ना-इन्साफी उसके साथ कर सकती थी कि उन हसीन और खुशगवार लमहों की याद उससे छीनकर उसे बिलकुल दीवालिया कर दे! इसके अलावा उससे कोई बदफेली भी नहीं हुई थी। बुनियादी तौर पर वह एक नेक और शरीफ आदमी था, और उसका दिल कह रहा था कि उस जैसे नेक और शरीफ आदमी को कभी हथकड़ी नहीं लग सकती। उसे विश्वास था कि

उसका दिल कभी गलत बात नहीं कहता !

कुछ बरस पहले वह चाय और शरबत का सामान ठेला-गाड़ी में रखकर गली-गली घूमा करता था तो उसके दिल ने शहादत दी थी, एक दिन वह अपना बहुत बड़ा होटल खोलेगा और कई-कई बैरे और खानसामे उसके नीचे काम करेंगे। उसके दिल की यह बात जितनी जल्दी उसने आशा की थी, उससे कहीं जल्दी पूरी हो गई थी। पांच-छः बरस में ही वह फटे हुए पाजामे-कुर्ते से शार्क-स्किन की बुश-शर्टों तक पहुंच गया, दो रुपये रोज़ से उसकी आमदनी तीस-चालीस रुपये रोज़ तक चली गई, और उसके बोल-चाल और चलने-फिरने के अन्दाज़ में इतना अन्तर आ गया कि उसे जाननेवाले भी नहीं कह सकते थे कि यह वही सुन्दरसिंह है जो एक दिन ठेला लगाया करता था। उसे महसूस होता था कि उसके बाहर की चीज़ ही नहीं बदली, वह अन्दर से भी पूरी तरह बदल गया है। केवल एक चीज़ नहीं बदली थी और वह थी उसकी बीवी, जिसकी सूरत से उसे नफरत थी। उसके पास जाकर सुन्दरसिंह के दिल की सारी उमंगें ठंडी पड़ जाती थीं, जिस वजह से पिछले पंद्रह बरस में वाहगुरु ने उसे कोई बच्चा-अच्चा नहीं दिया था। मगर उसका दिल कहता था कि उसकी सारी उम्र इसी तरह नहीं गुज़रेगी। वह, सरदार सुन्दरसिंह तलवाड़ एक न एक दिन अपनी सारी हसरतें ज़रूर पूरी करेगा। इसलिए जिस दिन सुन्दरी के उसके घर में आने की बात तय हुई, वह अपने दिल की बात का और भी कायल हो गया। उसे लगा कि उसके अन्दर ज़रूर किसी औलिया का वास है।

उसने बड़ी मुश्किल से मनाकर अपनी बीवी को उसके बाप के घर भेज दिया। वह जाना चाहती थी क्योंकि बहुत दिनों से जब-जब उसने जाने की इच्छा प्रकट की थी, सुन्दरसिंह ने यह कहकर उसका प्रस्ताव रद्द कर दिया था कि वह अपना एक-एक पैसा बिजनेस के बढ़ाने में लगा रहा है, उसके

पास उसे इधर-उधर भेजने के लिए पैसे नहीं हैं। मगर इस बार उसने अपने पिछले रवैये के लिए उससे माफी तक मांगी। और अनुरोध किया कि-वह उसका दिल रखने के लिए चली ही जाए। बीवी के चले जाने पर उसने खाली घर को इस तरह देखा जैसे अभी-अभी उसे उसने जाले-आले उतारकर ठीक किया हो, और खाली पलंग पर लेटकर इस परिवर्तन को महसूस करने का प्रयत्न किया।

सुन्दरी उस रात दस बजे से लेकर साढ़े बारह बजे तक उसके पास रही। वह मोटी-सी औरत हरजीत कौर उसे छोड़कर चली गई तो सुन्दरसिंह ने दरवाज़ा बंद करके चटखनी चढ़ा ली। यह उसकी ज़िंदगी में पहला मौका था कि एक इतनी हसीन लड़की उसके इतनी नज़दीक थी और उसके मन में किसी भी तरह का डर या अन्देशा नहीं था। वह अपनी सारी हसरतें और अरमान उसके शरीर पर पूरे कर सकता था। उसने पास जाकर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा, "सोहणेओ, बैठ जाओ।"

सुन्दरी ने हाथ छुड़ा लिया और कमरे में टहलने लगी। सुन्दरसिंह उससे छोटी-मोटी छेड़खानियां करने लगा। कभी उसे कंधे से पकड़कर उसके गाल चूम लेता और कभी उसके गदराए हुए वक्ष को हाथ से मसल देता। उसे छूते ही उसके शरीर में बिजलियाँ दौड़ जातीं। किसी-किसी क्षण उसे विश्वास नहीं होता कि जो कुछ हो रहा है वह एक हकीकत है। उसने सुन्दरी का हाथ मज़बूती से पकड़ लिया और फिर कहा, "चूज़ेओ, बैठ जाओ।"

सुन्दरी बैठ तो गई पर सुन्दरसिंह को लगा कि वह उसे विचित्र सन्देह-भरी नज़र से देख रही है। सहसा उसके शरीर की बिजलियां ठंडी होने लगीं। उन बिजलियों की गर्मी बनाए रखने के लिए उसने उसे खींचकर अपने साथ सटा लिया और कहा, "सोहणेओ, तुम हमें प्यार नहीं करते ?"

सुन्दरी ने उसकी बांहों से मुक्त होने का प्रयत्न किया तो सुन्दरसिंह और ठंडा पड़ने लगा। वह उससे इस तरह लिपट गया जैसे डूबते आदमी के हाथ में किसी तैराक की बांह आ गई हो और वह किसी भी तरह उसे छोड़ना न चाहता हो। वह उससे कहने लगा कि वह जिन्दगी में आज पहली बार दिल से प्यार कर रहा है, अपनी बीवी से वह आज तक प्यार नहीं कर सका, वह उसे बता नहीं सकता कि अपनी बीवी के हाथों वह कितना दुःखी है। उसने यह भी कहा कि सुन्दरी अपने सुन्दर को सिर्फ एक ग्राहक समझने की भूल न करे, सुन्दर उसे अपनी जान से बढ़कर मानता है, और उसके एक इशारे पर अपना घर-बार और बिज़नेस सब कुछ छोड़ सकता है। आज उसके दिल में एक ही कामना है कि उसकी सुन्दरी हमेशा-हमेशा के लिए इसी तरह उसके पास रहे। मगर बात कहते-कहते ही उसे ध्यान हो आया कि उसकी चाही हुई अक्सर बातें सच्ची हो जाती हैं, इसलिए उसने घर-बार, बिज़नेस छोड़ने की बात को तुरन्त लौटा लिया।

"सोहणेओ, तुम मेरे पास रहो तो मैं तुम्हें बंगला बनवा दूं, कार रख दूं—तुम सुन्दरसिंह को ऐसा-वैसा ही न समझना।"

उसने सोचा कि यह कहकर उसने बिज़नेस की कुर्बानी की बात रद्द कर दी है। सुन्दरी का शरीर अब कसमसा नहीं रहा था और सुन्दरसिंह का हाथ धीरे-धीरे उसकी पीठ को सहला रहा था। वह सोचने लगा, क्या सचमुच ऐसा दिन उसकी ज़िंदगी में आ सकता है जब सुन्दरी उसकी पत्नी के रूप में उसके घर में रह रही हो, वह उसकी बांह में बांह डाले हुए घर से निकले और उन्हें देखते ही ड्राइवर कार का दरवाजा खोलकर खड़ा हो जाए? मगर इससे पहले कि दिल का औलिया इस बात की गवाही देता, उसने झट से अपनी कल्पना में थोड़ा परिवर्तन कर लिया। उसने सोचा कि चाहे सुन्दरी खूबसूरत है, फिर भी क्या वह उसे ज़िन्दगी-

भर के लिए घर में रख सकता है ? वह एक शरीफ आदमी है और वह पेशेवर बदमाश है। इसलिए उसने जल्दी से तय कर लिया कि शरीफ आदमी होने के नाते घर में रखने के लिए उसे एक शरीफ लड़की ही चाहिए, सुन्दरी जैसी बाजारू लड़की नहीं।

मगर उसकी शराफत ने हजार कोशिश करने पर भी उस समय उसके दिल के अरमान पूरे नहीं होने दिए। कहां उसने सोचा था कि उस दिन उसके चालीस बरस के सारे अरमान निकल जाएंगे और कहां वह अढ़ाई घण्टे में अपने अरमान निकालने की भूमिका भी नहीं तैयार कर पाया। साढ़े बारह बजे हरजीत कौर ने दरवाजा खटखटाया तो सुन्दरी मुंह बिचकाकर उससे अलग हो गई और वह आप पसीना-पसीना हुआ, उठ खड़ा हुआ। दरवाजा खोलकर उसने हरजीत कौर से अनुनय किया कि वह सुन्दरी को कुछ देर और उसके पास रहने दे, वह उसे दुगने पैसे तक देने को तैयार है। मगर सुन्दरी ने एक मितलाहट-भरी नजर से उसकी तरफ देखा, जैसे वह इन्सान न होकर एक चलता-फिरता दवाईखाना हो, और बेरुखी से सीढ़ियों की तरफ चली गई। हरजीत कौर भी कन्धे झटककर उसके पीछे-पीछे सीढ़ियां उतर गई।

सुन्दरसिंह अपनी खुली हुई पगड़ी उठाकर आईने के सामने जा खड़ा हुआ।

"सुन्दरसिंह, तू गधा है, तू बैंगन है, तू अमरूद है," कहकर उसने दो-तीन बार अपने मुंह पर चपत मारी और पगड़ी लपेटने लगा। पगड़ी लपेटकर उसने फिर एक बार अपने मुंह पर चपत मारी।

"सुन्दरसिंह तू शलगम है शलगम। तू होटल छोड़ और ठेला चला।"

मगर कुछ दिन बाद जब सुन्दरी और हरजीत कौर पकड़ी गईं, और शहर में हर व्यक्ति के मुंह से सुन्दरी-कांड की चर्चा सुनाई देने लगी, तो सरदार सुन्दरसिंह के दिल से अपनी असफलता का खेद बहुत हद तक

जाता रहा। उसे यह भी लगा कि कुदरत ने इस तरह उसके तिरस्कार का बदला ले लिया है। सुन्दरी ने पुलीस के सामने बयान दिया था कि वह अभी नाबालिग है, और हरजीत कौर जबर्दस्ती उससे यह पेशा कराती है। इससे सुन्दरसिंह को लगा कि उसकी असफलता के पीछे भी शायद कुदरत का ही हाथ था—वाहगुरु ने अपनी बांह बढ़ाकर उसे इस अपराध का हिस्सेदार बनने से बचा लिया है। उसने मन ही मन वाहगुरु की अरदास की।

मगर यह सुनकर कि पुलीस की गाड़ी सिविल लाइन्ज़ में घूम रही है, उसका दिल खामखाह धड़कने लगा। उसे विश्वास था कि जिस तरह वाहगुरु ने जब-तब उसकी लाज रखी है, उस तरह आगे भी रखेगा। मगर उसे लगा कि पुलीस की गाड़ी अचानक उधर आ निकले और सुन्दरी उसे काउण्टर पर खड़े देखकर पहचान ले, तब तो वाहगुरु के लिए भी लाज रखना मुश्किल होगा। क्या पता वे लोग एक-एक प्याली चाय पीने के लिए ही उसके होटल का रुख कर लें और वहां आकर पुलीस-वाले सुन्दरी की आंखों से ताड़ लें कि दाल में कुछ काला है, और वहीं तहकीकात शुरू कर दें? उसने कांपते हाथ से गिरी हुई पेंसिल को उठाया, मगर उससे बिल-बुक में हिंदसे ठीक नहीं लिखे गए। उसने पेंसिल बीच में रखकर बिल-बुक बन्द कर दी। काउण्टर से हटकर उसने हरदितसिंह बैरे को इशारे से अपने पास बुलाया और उससे कहकर कि उसके सिर में दर्द है, वह उसकी जगह काउण्टर संभाल ले, वह पिछली गली के रास्ते घर की तरफ चल दिया।

घर में दाखिल होकर सुन्दरसिंह ने गली में खुलनेवाला दरवाज़ा बन्द कर लिया। सीढ़ियां चढ़कर वह ऊपर पहुंचा तो उसका उस कमरे में जाने को मन नहीं हुआ जहां उसकी ज़िन्दगी का हसीन ख्वाब पूरा होते-होते रह गया था। पहले हर रोज़ वह घर आते ही उस कमरे पर

एक हसरत-भरी नज़र डाल लेता था, मगर आज वह सीधा चौके में अपनी पत्नी भागवन्ती के पास चला गया। भागवन्ती ने ज़रा भी आश्चर्य प्रकट नहीं किया कि सरदारजी आज जल्दी क्यों चले आए हैं। वह चुपचाप आटे के पेड़े पर बेलन चलाती रही।

"भागवन्ती", सुन्दरसिंह ने उसके पास मोढ़े पर बैठते हुए कहा।

भागवन्ती ने हाथ रोककर आंखें उसकी ओर उठाईं जैसे कह रही हो कि कुछ बात कहनी है तो जल्दी से कह डालो, नहीं, मुझे काम करने दो।

"भागवन्ती, मुझे आज एक खयाल आया है।"

भागवन्ती ज़रा सतर्क हो गई। पन्द्रह बरस के विवाहित जीवन में जब कभी उसने इस तरह मुलायम होकर बात की थी, उसके पीछे कोई न कोई मतलब रहा था। एक बार जब उसे होटल खोलना था, उसने इसी तरह बात करके उससे उसके गहने मांगे थे। फिर जब उसे होटल का काम बढ़ाने के लिए पैसे की ज़रूरत थी तो उसने इसी तरह की बातों से उसे अपने बाप से मिला हुआ घर गिरवी रखने के लिए राज़ी किया था। अब उसके पास अपनी सम्पत्ति के रूप में चांदी के कुछ बरतनों के सिवा कुछ नहीं था। वे भी उसके दहेज में आए थे। वह पहले भी एक बार उससे कह चुकी थी कि वह किसी भी परिस्थिति में अपने बरतन उसे बेचने के लिए नहीं देगी। उसकी भौंहें तिरछी हो गईं और माथे पर बल पड़ गए।

"भागवन्ती, मैंने आज तक तेरे लिए कुछ नहीं किया।" सुन्दरसिंह ने आंखें भरे हुए यह बात कही तो भागवन्ती के हाथ से बेलन छूट गया। सुन्दरसिंह का अपने कुछ न कहने की बात कहना या सोचना उसके लिए बिलकुल अस्वाभाविक चीज़ थी। उसने बेलन संभालते हुए तीखी नज़र से उसे देखा कि आखिर इस बात का गहरा मतलब क्या हो सकता है।

सुन्दरसिंह ने पगड़ी उतारकर आले पर रख दी और घुटने ऊंचे उठा लिए।

"भागवन्ती, मैं तेरे लिए सोने की चूड़ियां बनवाना चाहता हूं।"

भागवन्ती ने एक लम्बी सांस ली, बेली हुई चपाती तवे पर डाली और कहा कि उसे गर्म फुलका खाना हो तो वह उसकी थाली लगा दे, सोने की चूड़ियां वह बहुत पहन चुकी है।

"भागवन्ती, तूने सुन्दरसिंह का दिल नहीं देखा। देखेगी तो कहेगी कि हां सुन्दरसिंह भी कुछ चीज़ है", कहता हुआ वह पगड़ी सिर पर रखकर उठ खड़ा हुआ।

भागवन्ती ने कुछ नहीं कहा, सिर्फ इतना पूछ लिया कि वह रोटी अभी खाएगा या ठहरकर। सुन्दरसिंह के मन में था कि वह उसके पास बैठकर उससे देर तक बातें करे और रोटी खाकर उसके साथ ही बीच के कमरे में जाए। उसने यह भी सोचा था कि मौका लगा तो वह सारी बात बताकर उससे माफी भी मांगेगा। क्योंकि उसे खयाल था कि अगर सुन्दरी ने पुलीस को उसका पता बता दिया और पुलीस उसके घर आ गई तो भागवन्ती ही उसका बचाव कर सकेगी। मगर भागवन्ती का उदासीन भाव देखकर उससे कुछ भी नहीं कहा गया और वह रोटी के लिए मना करके चौके से निकल आया। भागवन्ती ने एक बार भी उससे अनुरोध नहीं किया कि वह रोटी खाकर ही जाए। वह तवे पर रोटी को फुलाकर चुपड़ती रही। सुन्दरसिंह का मन खीझ गया कि इस औरत की वजह से वास्तव में उसकी ज़िन्दगी तबाह हो गई है। आज अगर उसे हथकड़ी लगेगी, तो इसीकी वजह से लगेगी। मगर वह तब भी शायद इसी तरह चकले पर बेलन चलाती रहेगी, और चिमटे से कोयले ठीक करती रहेगी।

कमरे में जाकर वह पलंग पर लेट गया तो उसे रह-रहकर भागवन्ती

पर क्रोध आने लगा। वह उससे आज तक शराफत बरतता आया है, इसलिए वह इसे बिलकुल ही बोदा समझती है। यह भी तो उसकी शराफत ही थी कि जिस दिन वह सुन्दरी को घर लाया, उस दिन उसने उसे उसके मैके भेज दिया। चाहिए तो यह था कि वह उसके सामने ही घर में यह करतब करता, जिससे वह एक बार तो महसूस करती कि वह उतना गावदी नहीं है जितना वह समझती है। अब तो वह ऐसे उससे व्यवहार करती है जैसे वह आदमी न होकर मिट्टी का ढेला हो।

गली में चार-छः व्यक्तियों के चलने की आवाज़ सुनकर सुन्दरसिंह चौंक गया। एक बार उसका दिल ज़ोर से धड़क गया और उसे अफसोस हुआ कि उसने कमरे की बत्ती जलती क्यों रहने दी है। उसे लगा कि दो ही क्षण बाद उसके दरवाज़े पर दस्तक दी जाएगी और उसके कुछ ही देर बाद शायद पुलीस उसे हथकड़ी लगाकर कोतवाली की तरफ ले जा रही होगी। मगर पैरों की आवाज़ शीघ्र ही दूर चली गई और धीरे-धीरे समाप्त हो गई। सुन्दरसिंह पलंग से उठा और खिड़की के पास चला गया। खिड़की की सलाखें बहुत ठंडी थीं और नीचे गली सुनसान थी। सुन्दरसिंह का मन एक विचित्र-सी निराशा से भर गया। उसने उन दो ही क्षणों में अपने मन को पुलीस के सामने घटित होने वाले दृश्य के लिए तैयार कर लिया था। मगर पुलीस तो क्या, गली में इन्सान की छाया तक न थी। वह फिर आकर पलंग पर लेट गया।

दिन में उसने कई तरह के किस्से सुने थे कि सुन्दरी ने लोगों के घरों में जाकर पुलीस को क्या-क्या चीज़ें बताई हैं। लोग सुन्दरी की याददाश्त पर हैरानी प्रकट कर रहे थे कि कैसे उसने एक-एक घर का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया है। चौके से अब भी चकले-बेलने की आवाज़ आ रही थी। सुन्दरसिंह ने करवट बदलकर सोचा कि इस समय सचमुच सुन्दरी पुलीस को लिए हुए वहां आ जाए और पुलीस उसे हथकड़ी पहना दे, तो

निःसंदेह भागवन्ती उसकी मर्दानगी के प्रति इस तरह उदासीन नहीं रह सकेगी और उसके दिल में उसके लिए कद्र पैदा होगी। उसके सामने वह पूरा दृश्य जैसे घटित होने लगा।

दरवाज़े पर दस्तक होती है और भागवन्ती दरवाज़ा खोलती है। सुन्दरी और पुलीस के सिपाहियों को देखकर वह भौंचक हो जाती है।

"भाई, सरदार सुन्दरसिंह का मकान यही है?" एक सिपाही पूछता है।

"हां, यही मकान है," सुन्दरी कहती है। "सीढ़ियों के साथ ही इनका बड़ा कमरा है। उसमें दाईं ओर एक पलंग बिछा है। चलिए ऊपर।"

भागवन्ती घबराई-सी उनके लिए रास्ता छोड़ देती है। वे सब ऊपर पहुंच जाते हैं। भागवन्ती भी डरी-डरी-सी उनके पीछे ऊपर आ जाती है। सुन्दरी पास आकर उसका हाथ पकड़ लेती है।

"यह है सरदार सुन्दरसिंह," वह कहती है। "लगा लो इसे हथकड़ी।"

"हाथ आगे करो सरदारजी," सिपाही पास आकर उसे हथकड़ी पहनाने लगता है। "बहुत मौज कर ली, अब चलकर हवालात की हवा खाओ।"

वह तनकर खड़ा हो जाता है और कहता है कि वह इस मामले में बिलकुल बेकसूर है। वाहगुरु की सौगन्ध खाकर कह सकता है कि वह बिलकुल बेकसूर है। यह लड़की खामखाह उसका नाम लगा रही है।

भागवन्ती उसके और सिपाही के बीच आकर खड़ी हो जाती है और कहती है कि वे उसके पति को गिरफ्तार नहीं कर सकते। उसका पति कभी अपराधी नहीं हो सकता। वह बेचारा तो किसी औरत की तरफ आंख उठाकर भी नहीं देखता। वह गौ की तरह असील और सौ शरीफों का एक शरीफ है।

यहां तक आकर सुन्दरसिंह को लगा कि सिलसिला गलत हो गया है। इस तरह पुलीस के हाथों से भागवन्ती उसे बचा ले, तब तो वह

उसके सामने और भी हीन हो जाएगा। और वह चाहता यह है कि भागवन्ती के दिल पर इस बात का सिक्का बैठ जाए कि वह मिट्टी का माधो नहीं है, एक दिल और गुर्देवाला खालिस आदमी है; यह और बात है कि वह अपने दिल को उससे मुहब्बत करने के लिए राज़ी नहीं कर पाता। इसलिए पुलीस के ऊपर आने के बाद की बात वह दूसरी तरह सोचने लगा।

सिपाही उसे हथकड़ी पहनाता हुआ कहता है कि सरदारजी, चलो, चलकर हवालात की हवा खाओ तो वह भागवन्ती पर एक गहरी नज़र डालकर हाथ आगे कर देता है। भागवन्ती पास आकर उसकी बांह पकड़ लेती है।

"हाय सरदारजी," वह रोती आवाज़ में कहती है। "ये लोग आपको हथकड़ी क्यों लगा रहे हैं? हाय मैं आपके बिना अकेली घर में कैसे रहूंगी?"

सुन्दरी भागवन्ती को बांह से पकड़कर परे हटा देती है और कहती है कि वह पति को पहले बुरे काम करने से रोकती, अब क्यों रोती है? भागवन्ती कोने में जाकर फफक-फफककर रोने लगती है और सुन्दरी पलंग के नीचे से उसके जूते निकालकर उसके आगे रख देती है, और अलमारी से उसकी पगड़ी निकालकर उसे दे देती है।

"सरदारजी, जूते पहन लो और पगड़ी बांध लो, फिर हथकड़ी लगवाना", वह कहती है। वह हथकड़ी लगवाकर चलने के लिए तैयार हो जाता है तो सुन्दरी अलमारी से निकालकर एक रूमाल भी उसकी जेब में रख देती है।

"अच्छा, भागवन्ती, मैं जा रहा हूं। घर का खयाल रखना", वह कहता है और सिपाहियों के साथ चल देता है। भागवन्ती रो-रोकर कहती रहती है कि सरदारजी, न जाओ, मुझे घर में अकेली छोड़कर न जाओ, हाय

मैं आपके पीछे घर में अकेली कैसे रहूंगी ? वे लोग सीढ़ियां उतरकर नीचे आते हैं तो पुलीस की गाड़ी का ड्राइवर उसके लिए दरवाज़ा खोल देता है—और उसे एक बार फिर अपने दिल के औलिया की बात पर विश्वास हो उठता है कि उसने जो नक्शा उसे दिखाया था वह किसी हद तक तो पूरा हो ही गया।

पुलीस की गाड़ी में बैठ जाने के बाद सुन्दरसिंह की कल्पना आगे काम नहीं कर सकी। उसने एक-दो बार करवट बदली और सीधा हो गया। भागवन्ती चूल्हा बुझा रही थी। पानी पड़ने से लकड़ियों से सी-सी की आवाज़ निकल रही थी। गली में कोई आहट सुनाई नहीं दे रही थी। वह उठकर सीढ़ियों के पास चला गया और कुछ क्षण नीचे की तरफ देखता रहा। फिर उसने भागवन्ती को आवाज़ देकर कहा कि वह बाहर जा रहा है और पैरों से आवाज़ करता हुआ सीढ़ियां उतरने लगा। उसे आशा थी कि शायद भागवन्ती उसे पीछे से आवाज़ दे कि उसे जाना है तो रोटी खाकर जाए, मगर भागवन्ती ने उसकी आवाज़ का उत्तर भी नहीं दिया और बुझी हुई लकड़ियों को कोने में फेंकती रही।

सुन्दरसिंह गली से निकलकर बाज़ार में आया तो ज़्यादातर दुकानें बन्द हो चुकी थीं। वह घूमता हुआ अपने होटल की तरफ चला गया। होटल में कोई गाहक नहीं था। बैरे सामान संभालकर वहां से चलने की तैयारी कर रहे थे।

"सरदारजी, अब सिरदर्द ठीक है ?" हरदितसिंह बैरे ने पूछा।

"हां ठीक है", कहकर सुन्दरसिंह ने खाली मेज़ों-कुर्सियों पर एक नज़र डाली और पूछा कि उसके पीछे कोई उसे पूछने के लिए तो नहीं आया।

"नहीं सरदारजी, कोई नहीं आया", हरदितसिंह ने उत्तर दिया।

"कोई भी नहीं आया ?" उसने फिर पूछा।

"नहीं।"

सुन्दरसिंह दाढ़ी के बाल बैठाता हुआ होटल से निकल आया और कुछ देर सड़कों के चक्कर काटता रहा। वह कम्पनी बाग से होकर ट्रेनिंग कालेज की तरफ निकल गया। उधर से लौटते हुए वह हौसला करके पुलिस की चौकी की तरफ भी हो आया। उसके अलावा जैसे दुनिया में किसीको खयाल ही नहीं था कि आज सुन्दरी-कांड के अभियुक्तों की गिरफ्तारियां हुई हैं और हो रही हैं। हर जगह शान्ति और खामोशी छाई थी। घर की ओर लौटते हुए वह दैनिक 'लोक समाचार' के कार्यालय के सामने से गुज़रा। अन्दर छापे की मशीनें घरड़-घरड़ कर रही थीं। उसने सोचा कि वे मशीनें उस समय शायद वही खबर छाप रही हों—सुन्दरी-कांड में पन्द्रह सम्भ्रान्त व्यक्ति गिरफ्तार कर लिए गए। सुबह सारे प्रदेश में लोग उन गिरफ्तारियों की चर्चा कर रहे होंगे। गिरफ्तार हुए व्यक्तियों के नाम हर एक की ज़बान पर होंगे। शायद कुछ एक के फोटो भी छपें। महीनों तक वे लोग जनता की आंखों में रहेंगे। बहुत-से लोग दिल ही दिल उनसे रश्क भी करेंगे। मगर सुन्दरसिंह तलवाड़ का नाम उनमें नहीं होगा। उसने एक लम्बी सांस ली। मन में अजब बेचैनी भर गई। वह स्वयं नहीं समझ सका कि अभियुक्त करार न दिए जाने से उसके मन को तसल्ली मिली है या निराशा हुई है। वह कुछ देर मशीनों की आवाज़ सुनकर घर की तरफ चल दिया।

गली में दाखिल होने से पहले उसे आशा थी कि शायद उसके घर के बाहर हंगामा हो रहा हो, घर की तलाशी हो रही हो और भागवन्ती को डरा-धमकाकर पूछा जा रहा हो कि उसने पति को कहां छिपा रखा है या वह घर से भागकर कहां गया है। परन्तु गली जितनी उसके जाने के समय सुनसान थी, उतनी ही सुनसान अब भी थी। उसके कमरे की बत्ती, जो वह जलती छोड़ गया था, अब बुझी हुई थी।

"भागवन्ती!" उसने सीढ़ियां चढ़कर आवाज़ दी।

भागवन्ती सिर-मुंह ओढ़कर लेटी हुई थी। उसने कुनमुनाकर धीरे से कहा कि रोटी डिब्बे में रखी है, अगर वह होटल से ही पेट भरकर न आया हो, तो वहां से निकालकर खा ले।

सुन्दरसिंह के मन की खीझ गुस्से में बदल गई। उसने अपने पलंग पर बैठकर जूते झटककर उतार दिए और कहा, "तुझे रोटी की पड़ी है ? यहां चाहे किसीकी जान को बनी हो, तुझे क्या परवाह है ?"

भागवन्ती धीरे-धीरे उठ गई, मगर सिर, मुंह लपेटे अपने पलंग पर ही बैठी रही।

"जान को क्या बनी है ?" उसने पूछा। "फिर पैसे जुए में हार आए हो ?"

"हां, मैं रोज जुआ खेलता हूं न !" सुन्दरसिंह बड़बड़ाया। "यहां यह नहीं पता कि घड़ी में क्या हो, पल में क्या हो, और इसे बातें बनाने की सूझ रही है।"

"तो ऐसा क्यों कर आए हो जो तुम्हें पता नहीं कि घड़ी में क्या हो और पल में क्या हो ?" भागवन्ती अब भी ठहरे हुए उदासीन स्वर में बोली, "किसीका खून कर आए हो ?"

"हां, अपना खून कर आया हूं !" सुन्दरसिंह उसी तरह गुस्से में बोला और पगड़ी उतारकर शीशे के सामने चला गया। वहां खड़े-खड़े उसने कहा कि पता नहीं किस समय पुलीस उसे पकड़कर ले जाए, इसलिए वह अब घर-बार ठीक से संभाल ले।

"क्यों पुलीस को तुम्हें किसलिए पकड़ने आना है ?" भागवन्ती अब वास्तव में कुछ घबराकर बोली। "होटल से बोतलें-ओतलें तो नहीं पकड़ी गई ?"

सुन्दरसिंह थोड़ा प्रसन्न हुआ कि अब उसका तीर निशाने पर जा लगा है।

"तुझे पता नहीं आज शहर में गिरफ्तारियां हो रही हैं ?" उसने फिर भी स्वर में खीझ बनाए रखते हुए कहा।

"कैसी गिरफ्तारियां ?"

"कैसी गिरफ्तारियां ?" सुन्दरसिंह अपने पलंग पर लौट आया। "गिरफ्तारियां कैसी होती हैं ? पुलीस उन सब लोगों को हथकड़ियां लगा रही है जिनके नाम वह लड़की उन्हें बता रही है।"

"कौन लड़की लोगों के नाम पुलीस को बता रही है ?" भागवन्ती की घबराहट जाती रही और उसके स्वर में भी झुंझलाहट भर गई। "आज फिर पी-पिला आए हो ?"

'सारी दुनिया आज सुन्दरी की चर्चा कर रही है और इसे मैं बताऊं कि वह कौन है !' सुन्दरसिंह ने महत्त्व के भाव से बांहें पीछे कर लीं। "मैं कह रहा हूं कि घर संभाल ले, हो सकता है कि रात को ही पुलीस यहां छापा मार ले।"

"मगर पुलीस को हमारे यहां किस बात के लिए छापा मारना है ?" भागवन्ती उसे गौर से देखने लगी कि वह ऐसी बहकी-बहकी बातें क्यों कह रहा है।

"वह मेरा नाम पुलीस को बता देगी तो पुलीस यहां छापा मारेगी कि नहीं ?" सुन्दरसिंह ने सोचा कि अब उसने बात खोल दी है तो भागवन्ती रोना-पीटना आरम्भ कर देगी। मगर भागवन्ती उसी तरह स्थिर बैठी रही।

"उसे तुम्हारे नाम से क्या मतलब है ?" उसने पूछा।

सुन्दरसिंह ने मुश्किल से अपनी मुस्कराहट को दबाया और कहा, "वह एक दिन यहां आई जो थी।"

परन्तु यह देखकर सुन्दरसिंह को सख्त निराशा हुई कि उसके ब्रह्मास्त्र का भी भागवन्ती पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बल्कि भागवन्ती

की आंखों का भाव तिरस्कार-पूर्ण हो उठा।

"रहने दो सरदारजी", उसने कहा। "मन के लड्डू मत फोड़ो। उसे आप ही के पास तो आना था! जाओ जाकर रोटी खा लो। और नहीं खानी है तो बत्ती बुझाकर सो रहो। सारी उम्र बीत गई आपको सपने देखते।"

"तू मत मान··· ", सुन्दरसिंह ने उलझे हुए मगर शिथिल स्वर में कहा। "मैं तो आप कहता हूं कि मुझसे गलती हुई है। मगर जो गलती होनी थी सो हो गई। तू घर की देखभाल··· ।"

"बस करो सरदारजी, बस करो", भागवन्ती ने उसकी बात बीच में ही काट दी और सिर-मुंह ओढ़कर लेटती हुई बोली, "खामखाह की बातें करके क्यों ज़बान ओछी करते हो? उठकर बत्ती बुझा दो, मुझे नींद आ रही है।" और उसने करवट बदलकर उसकी तरफ पीठ कर ली।

सरदार सुन्दरसिंह का मन बुरी तरह खीझ गया और वह उठकर कमरे में टहलने लगा। उसने एक बार मेज का दराज़ खोलकर बन्द कर दिया। फिर पलंग को थोड़ा आगे को सरका दिया। खिड़की के पास खड़ा होकर वह फिर नीचे देखने लगा। वही नीरवता छाई थी। उसके मन की बेचैनी बढ़ गई। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या कहे या करे जिससे भागवन्ती को विश्वास हो जाए कि वह जो कह रहा है वह सच है और एक बार वह माथे पर हाथ मार-मारकर रो उठे। मगर बहुत सोचकर भी कोई तरीका उसकी समझ में नहीं आया। हवा का एक ठंडा झोंका लगने से वह खिड़की के पास से हट आया। भागवन्ती तब तक ज़ोर-ज़ोर से खर्राटे भरने लगी थी। उसने हिंस्र पशु की-सी आंखों से भागवन्ती के सोए हुए शरीर को देखा, और बत्ती बुझाकर चौके में चला गया।

मिस पाल

वह दूर से दिखाई देती हुई आकृति मिस पाल ही हो सकती थी।

फिर भी विश्वास करने से पहले मैंने अपना चश्मा ठीक किया। निःसन्देह, वह मिस पाल ही थी। यह तो खैर मुझे पता था कि वह उन दिनों कुल्लू में ही कहीं रहती है, मगर इस तरह अचानक उससे भेंट हो जाएगी, यह मैंने नहीं सोचा था। और उसे सामने देखकर भी मुझे यह विश्वास नहीं हुआ कि वह स्थायी रूप से कुल्लू और मनाली के बीच उस छोटे-से गांव में ही रहती होगी। जब वह दिल्ली से नौकरी छोड़कर आई थी, तो वहां लोगों ने उसके बारे में क्या-क्या नहीं सोचा था!

बस रायसन के डाकखाने के पास पहुंचकर रुक गई। मिस पाल डाकखाने के बाहर खड़ी पोस्टमास्टर से कुछ बात कर रही थी। हाथ में वह एक थैला लिए थी। बस के रुकने पर वह न जाने किस बात के लिए पोस्टमास्टर को धन्यवाद देती हुई बस की तरफ मुड़ी ही थी कि मैं उतर-कर उसके सामने पहुंच गया। एक आदमी के इस तरह अचानक सामने आ जाने से मिस पाल पहले तो थोड़ा अचकचा गई, मगर मुझे पहचानते ही उसका चेहरा खुशी और उत्साह से खिल गया।

"अरे तुम, रणजीत?" उसने कहा, "तुम यहां कहां से टपक पड़े?"

"मैं इस बस से मनाली से आ रहा हूं," मैंने कहा।

"अच्छा ? मनाली तुम कब से आए हुए थे ?"

"आठ-दस दिन हुए आया था। आज वापस जा रहा हूं।"

"आज ही जा रहे हो ?" मिस पाल के चेहरे से आधा उत्साह गायब हो गया। "देखो, कितनी बुरी बात है कि आठ-दस दिन से तुम यहां हो और मुझे मिलने की तुमने कोशिश भी नहीं की। तुम्हें यह तो पता ही होगा कि आजकल मैं कुल्लू में हूं।"

"हां, यह तो पता था, मगर यह नहीं पता था कि कुल्लू के किस इलाके में हो। अब भी तुम अचानक ही दिखाई दे गईं, नहीं मुझे कहां पता चलता कि तुम इस जंगल को आबाद कर रही हो !"

"सचमुच यह बहुत ही बुरी बात है," मिस पाल उलाहने के स्वर में बोली। "तुम इतने दिन से यहां हो और मुझसे तुम्हारी भेंट हुई आज जाने के समय...।"

ड्राइवर ज़ोर-ज़ोर से हॉर्न बजाने लगा। मिस पाल ने कुछ चिढ़कर ड्राइवर की तरफ देखा और एकसाथ झिड़कने और क्षमा मांगने के स्वर में कहा, "बस जी एक मिनट। मैं भी इसी बस से कुल्लू चल रही हूं। मुझे कुल्लू की एक सीट दे दीजिए। थैंक यू, थैंक यू वैरी मच !" और फिर मेरी तरफ मुड़कर बोली, "तुम इस बस से कहां तक जा रहे हो ?"

"आज तो इस बस से जोगिन्दरनगर जाऊंगा। वहां एक दिन रह-कर कल सुबह आगे की बस पकड़ूंगा।"

ड्राइवर अब और भी ज़ोर से हॉर्न बजाने लगा। मिस पाल ने एक बार क्रोध और बेबसी के साथ उसकी तरफ देखा और बस के दरवाज़े की तरफ बढ़ती हुई बोली, "अच्छा कुल्लू तक तो हम लोगों का साथ है ही; और बात कुल्लू चलकर करेंगे। मैं तो कहती हूं कि तुम दो-चार दिन यहीं रुको, फिर चले जाना।"

बस में पहले ही बहुत भीड़ थी; और दो-तीन आदमी वहां से और चढ़ गए थे, जिससे अन्दर खड़े होने की जगह भी नहीं रही थी। मिस पाल दरवाज़े से अन्दर जाने लगी तो कण्डक्टर ने हाथ बढ़ाकर उसे रोक दिया। मैंने कण्डक्टर से बहुतेरा कहा कि अन्दर मेरे वाली जगह खाली है, मिस साहबा वहां बैठ जाएंगी और मैं भीड़ में जिस किसी तरह खड़ा होकर चला जाऊंगा, मगर कण्डक्टर एक बार ज़िद्द पर अड़ा तो अड़ा ही रहा कि वह और सवारी नहीं ले सकता। मैं अभी उससे बात कर ही रहा था कि ड्राइवर ने बस स्टार्ट कर दी। मेरा सामान बस में था, इस-लिए मैं दौड़कर चलती बस में सवार हो गया। दरवाज़े से अन्दर जाते हुए मैंने एक बार मुड़कर मिस पाल की तरफ देख लिया। वह इस तरह अचकचाई-सी खडी थी जैसे कोई उसके हाथ से उसका सामान छीन-कर भाग गया हो, और उसे समझ न आ रहा हो कि उसे क्या करना चाहिए।

बस हल्के-हल्के मोड़ काटती हुई कुल्लू की तरफ बढ़ने लगी। तब मुझे अफसोस होने लगा कि मिस पाल को बस में जगह नहीं मिली तो मैंने ही क्यों नहीं अपना सामान वहां उतरवा लिया। मेरा टिकट जोगिन्दरनगर का था, मगर यह ज़रूरी तो नहीं था कि उस टिकट से जोगिन्दरनगर तक जाऊं ही। मगर मिस पाल से भेंट कुछ ऐसे आकस्मिक ढंग से हुई थी और निश्चय करने के लिए समय इतना थोड़ा था कि मैं यह बात उस समय सोच भी नहीं सका था। थोड़ा-सा भी समय और मिलता तो मैं ज़रूर कुछ देर के लिए वहां उतर जाता। उस थोड़े-से समय में तो मैं मिस पाल से कुशल-समाचार भी नहीं पूछ सका था और मन में उसके सम्बन्ध में कितना-कुछ जानने की उत्सुकता थी। उसके दिल्ली से आने के बाद लोग उसके बारे में न जाने क्या-क्या बातें करते रहे थे। किसीका अन्दाज़ा था कि उसने कुल्लू में एक रिटायरशुदा

अंग्रेज़ मेजर से शादी कर ली है और मेजर ने अपने सेब के बगीचे उसके नाम कर दिए हैं। किसीकी खबर थी कि उसे वहां सरकार की तरफ से वज़ीफा मिल रहा है और वह करती-धरती कुछ नहीं, बस घूमती है और हवा खाती है। कुछ ऐसे लोग भी थे जिनका कहना था कि मिस पाल का दिमाग खराब हो गया है और सरकार उसे इलाज के लिए अमृतसर पागलखाने में भेज रही है। मिस पाल, जो एक दिन अचानक ही अपनी पांच सौ की लगी हुई नौकरी छोड़कर चली आई थी, इससे लोगों ने उसके बारे में कई-कई तरह की कहानियां प्रचलित कर रखी थीं।

जिन दिनों मिस पाल ने त्यागपत्र दिया था, उन दिनों मैं दिल्ली में नहीं था, लम्बी छुट्टी लेकर बाहर गया हुआ था। मगर मैं काफी हद तक मिस पाल के नौकरी छोड़ने का कारण जानता था। वह सूचना विभाग में हम लोगों के साथ ही काम करती थी और राजेन्द्रनगर में हमारे घर से दस-बारह घर छोड़कर ही रहती थी। उसका जीवन दिल्ली में भी काफी अकेला जीवन था, क्योंकि दफ्तर के ज़्यादातर लोगों से उसका मन-मुटाव रहता था और बाहर के लोगों से भी वह बहुत कम मिलती-जुलती थी। दफ्तर का वातावरण उसे अपने अनुकूल नहीं लगता था और वह एक-एक दिन वहां जैसे गिनकर काटती थी। उसे प्रायः हर व्यक्ति से शिकायत रहती थी कि वह घटिया मनोवृत्ति का है और उसके साथ उठना-बैठना हो ही नहीं सकता।

"ये लोग इतने ओछे और बेईमान हैं," वह कहा करती थी, "इतनी छोटी और कमीनी बातें करते हैं कि मेरा इनके बीच काम करते हुए हर वक्त दम घुटता रहता है। न जाने क्यों लोग इतनी छोटी-छोटी बातों पर एक-दूसरे से लड़ते हैं और अपने छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए एक-दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश करते हैं!"

मगर उस वातावरण में उसके दुःखी रहने का मुख्य कारण शायद

दूसरा ही था जिसे वह कभी अपने मुंह से स्वीकार नहीं करती थी। लोग उस बात को जानते थे इसलिए जान-बूझकर उसे छेड़ने के लिए तरह-तरह की बातें कहते रहते थे। बुखारिया तो अक्सर रोज़ ही उसके रंग-रूप पर कोई न कोई टिप्पणी कर देता था।

"क्या बात है मिस पाल, आज तुम्हारा रंग बहुत निखर रहा है!"

दूसरी तरफ से जोरावर सिंह उसमें बात जोड़ देता, "और आज-कल मिस पाल पहले से स्लिम भी तो हो रही है।"

मिस पाल इन संकेतों से बेतरह परेशान हो उठती थी और कई बार ऐसे मौकों पर कमरे से उठकर चली जाती थी। उसकी वेश-भूषा पर भी लोग तरह-तरह की टिप्पणियां करते रहते थे। वह बेचारी शायद अपने शरीर के फैलाव की क्षतिपूर्ति के लिए ही अपने बाल छोटे कटाती थी, बगैर बांह की कमीज़ें पहनती थी और बनाव-सिंगार से चिढ़ होते हुए भी रोज काफी समय मेक-अप पर खर्च करती थी। मगर दफ्तर में दाखिल होते ही उसे किसी न किसी के मुंह से ऐसी बात सुनने को मिल जाती—"मिस पाल, तुम्हारी नई कमीज़ का डिज़ाइन बहुत अच्छा है। आज तो तुम गज़ब ढा रही हो!"

मिस पाल को इस तरह की हर बात दिल में चुभ जाती थी और जितनी देर वह दफ्तर में रहती उतनी देर उसका चेहरा बहुत गम्भीर बना रहता था। जब पांच बजते तो वह इस तरह अपनी मेज़ से उठती जैसे कई घंटे की यातना भोगने के बाद उसकी छुट्टी हुई हो। दफ्तर से उठकर वह सीधी अपने घर चली जाती थी और दूसरे दिन सुबह दफ्तर जाने तक वहीं रहती। शायद दफ्तर के लोगों से तंग आने की वजह से वह और लोगों से भी अपना मेल-जोल नहीं बढ़ाना चाहती थी। मेरा घर बहुत पास होने की वजह से, या शायद इसलिए कि दफ्तर के लोगों में मैं ही एक ऐसा व्यक्ति था जिसने उसे कभी शिकायत का मौका नहीं

दिया था, वह कभी-कभी शाम को हमारे यहां चली आती थी। मैं अपनी बूआ के यहां रहता था और मिस पाल मेरी बूआ और उनकी लड़कियों से काफी घुल-मिल गई थी। कई बार घर के कामों में वह उनका हाथ भी बटा देती थी। किसी-किसी दिन हम लोग भी उसके यहां चले जाते थे। वह घर में समय बिताने के लिए संगीत और चित्रकला का अभ्यास करती रहती थी। हम लोग उसके यहां पहुंचते तो उसके कमरे से सितार की आवाज़ आ रही होती या वह रंग और कूचियां लिए कोई तसवीर बनाने में उलझी होती। मगर जब वह इन दोनों कामों में से कोई भी काम न कर रही होती, अपने तख्त पर बिछे हुए मुलायम गद्दे पर दो तकियों के बीच लेटी छत की तरफ देख रही होती। उसके गद्दे पर जो झीना रेशमी कपड़ा बिछा रहता था, उसे देखकर न जाने क्यों मुझे बहुत उलझन होती थी और मेरा मन करता था कि उसे निकालकर कहीं बाहर फेंक दूं। उसके कमरे में सितार, तबला, रंग, कैनवस, तसवीरें, कपड़े तथा नहाने और चाय बनाने का सामान इस तरह उलझे-बिखरे होते थे कि बैठने के लिए कुरसियों का उद्धार करना एक समस्या हो जाती थी। कभी मुझे उसके झीने रेशमी कपड़ेवाले तख्त पर बैठना पड़ जाता तो मुझे मन में बहुत परेशानी होती और मेरा मन करता कि जितनी जल्दी हो सके वहां से चला जाऊं। मिस पाल अपने कमरे में चारों तरफ खोजकर जाने कहां से चायदानी और तीन-चार टूटी हुई प्यालियां निकाल लेती और हम लोगों को 'फर्स्ट क्लास बोहीमियन कॉफी' पिलाने की तैयारी करने लगती। कभी वह हम लोगों को अपनी बनाई हुई तसवीरें दिखाती और हम तीनों—मैं और मेरी दोनों बहनें—अपना अज्ञान छिपाने के लिए उनकी प्रशंसा कर देते। मगर कई बार वह बहुत उदास होती और ठीक ढंग से बात भी नहीं करती। मेरी बहनें ऐसे मौकों पर उससे चिढ़ जातीं और कहतीं कि वे उसके यहां फिर

कभी नहीं जाएंगी। मगर मुझे ऐसे मौकों पर मिस पाल से ज्यादा सहानुभूति ही होती थी।

आखिरी बार जब मैं मिस पाल के यहां गया, उस दिन मैंने उसे बहुत ही उदास देखा था। मेरा उन दिनों अपेंडेसाइटिस का ऑपरेशन हुआ था और मैं कई दिन अस्पताल में रहकर आया था। मिस पाल उन दिनों प्रायः रोज़ ही अस्पताल में खबर पूछने आती रही थी। बूआ अस्पताल में मेरे पास ही रहती थीं, मगर खाने-पीने का सारा सामान इकट्ठा करना उनके लिए बहुत मुश्किल था। मिस पाल सुबह-सुबह आकर सब्ज़ियां और दूध वगैरह दे जाती थी। जिस दिन मैं उसके यहां गया, उससे एक दिन पहले ही मेरी अस्पताल से छुट्टी हुई थी और मैं अभी काफी कमज़ोर था। फिर भी मैं इसलिए उसके यहां गया था कि उसने मेरे लिए जो तकलीफ उठाई थी, उसके लिए मैं उसे धन्यवाद दे आऊं।

मिस पाल ने दफ्तर से छुट्टी ले रखी थी और कमरा बन्द किए अपने गद्दे पर लेटी थी। मुझे लगा कि सुबह से शायद वह नहाई भी नहीं है।

"क्या बात है मिस पाल ? तबीयत तो ठीक है ?" मैंने पूछा।

"तबीयत बिलकुल ठीक है," उसने कहा, "मगर मैं नौकरी छोड़ने की सोच रही हूं।"

"क्यों ? कोई खास बात हो गई है क्या ?"

"नहीं, खास बात क्या होगी ! बात इतनी ही है कि मैं ऐसे लोगों के बीच काम कर ही नहीं सकती। मैं सोच रही हूं कि कहीं दूर एक खूबसूरत-से पहाड़ी इलाके में चली जाऊं और वहां रहकर संगीत और चित्रकला का ठीक से अभ्यास करूं। मुझे लगता है कि मैं खामखाह अपनी जिन्दगी यहां बरबाद कर रही हूं। मेरी समझ में नहीं आता कि

इस तरह की ज़िन्दगी जीने का मतलब ही क्या है। सुबह उठती हूं, दफ्तर चली जाती हूं। वहां सात-आठ घण्टे खराब करके घर आती हूं, खाना खाती हूं और सो जाती हूं। यह सारा का सारा सिलसिला मुझे बिलकुल बेमतलब लगता है। मैं सोचती हूं कि मेरी ज़रूरतें ही कितनी हैं! मैं कहीं भी जाकर एक छोटा-सा कमरा या शैक ले लूं तो थोड़ा-सा ज़रूरत का सामान अपने पास रखकर पचास-साठ या सौ रुपये में गुज़ारा कर सकती हूं। यहां जो मैं पांच सौ लेती हूं, वे पांच के पांच सौ ही खर्च हो जाते हैं। किस तरह खर्च हो जाते हैं, यह खुद मेरी समझ में नहीं आता। अगर ज़िन्दगी इसी तरह चलनी है तो क्यों खामखाह मैं दफ्तर जाने-आने का भार ढोती रहूं? बाहर रहने में कम से कम मुझे अपनी स्वतन्त्रता तो होगी। मेरे पास कुछ रुपये पहले के हैं और कुछ रुपये मुझे अपने प्राविडेंट फण्ड के मिल जाएंगे। इतने में एक छोटी-सी जगह पर तो मेरा काफी दिन गुज़ारा हो सकता है। मैं किसी ऐसी जगह जाकर रहना चाहती हूं जहां यह सारी गन्दगी न हो और लोग इस तरह की छोटी हरकतें न करते हों। इन्सान को ठीक से जीने के लिए कम-से-कम यह तो महसूस होना चाहिए कि उसके आसपास का वातावरण उजला और साफ है, और वह एक मेढक की तरह गदले पानी में नहीं जी रहा।"

"मगर तुम यह कैसे कह सकती हो कि जहां भी तुम जाकर रहोगी, वहां हर चीज़ बिलकुल वैसे ही होगी जैसे तुम चाहती हो? मैं तो समझता हूं कि इन्सान जहां भी चला जाए, वहां अच्छी और बुरी दोनों तरह की चीज़ें उसे अपने आसपास नजर आएंगी ही। तुम यहां के वातावरण से घबराकर कहीं और जाती हो तो यह कैसे कहा जा सकता है कि वहां का वातावरण भी तुम्हें ऐसा ही नहीं लगेगा? इसलिए मैं तो समझता हूं कि नौकरी छोड़ने की बात तुम गलत सोचती हो। तुम यहीं

रहो, और अपना संगीत और चित्रकला का अभ्यास करती रहो। लोग कुछ भी कहते रहें, कहने दो!"

मगर मिस पाल की वितृष्णा इससे कम न हुई। "नहीं, तुम नहीं समझते रणजीत," वह बोली। "यहां मैं ऐसे लोगों के बीच और रहूंगी तो मेरा दिमाग बिलकुल खराब हो जाएगा। तुम नहीं जानते कि मैं जो तुम्हारे लिए सुबह दूध और सब्ज़ियां लेकर जाती रही हूं, उसे लेकर भी ये लोग यहां क्या-क्या बातें करते रहे हैं। जो लोग इन्सान के अच्छे से अच्छे काम का ऐसा मतलब लेते हों उनके बीच इन्सान रह ही कैसे सकता है? मैंने यह सब बहुत दिन सह लिया है, अब और मुझसे नहीं सहा जाता। मैं सोच रही हूं कि जितनी जल्दी हो सके यहां से चली जाऊं। बस यही बात नहीं तय कर पा रही कि कहां जाऊं। अकेली होने से किसी अनजान जगह जाकर रहते डर भी लगता है। तुम जानते ही हो कि मैं···।" और बात बीच में ही छोड़कर वह सहसा उठ खड़ी हुई। "अच्छा, तुम्हारे लिए कुछ चाय-वाय तो बनाऊं। तुम अस्पताल से निकलकर आए हो और मैं हूं कि अपने बारे में ही बात किए जाती हूं। अभी कुछ दिन तुम्हें घर में आराम करना चाहिए। अभी से इस तरह बाहर चलने-फिरने लगोगे तो ठीक नहीं।"

"नहीं, मैं चाय नहीं पिऊंगा," मैंने कहा। "मैं तुम्हें कुछ समझा तो नहीं सकता, मगर मैं समझता हूं कि तुम लोगों की बातों को ज़रूरत से ज़्यादा महत्त्व दे रही हो। और मेरा यह भी खयाल है कि लोग वास्तव में उतने बुरे नहीं हैं जितना तुम समझती हो। अगर तुम इस नज़र से सोचो कि···"

"तुम इस बात को रहने दो," मिस पाल ने मेरी बात बीच में ही काट दी, "मैं इन लोगों से दिल से नफरत करती हूं। तुम इन्हें इन्सान समझते हो? मुझे तो ऐसे लोगों से अपना पिंकी कहीं अच्छा लगता है।

इसमें उन लोगों से कहीं ज़्यादा सभ्यता है ।"

पिंकी मिस पाल का छोटा-सा कुत्ता था। वह कुछ देर उसे गोदी में लिए उसके बालों पर हाथ फेरती रही। मैंने पहले कई बार देखा था कि वह उस कुत्ते को एक बच्चे की तरह ही प्यार करती है और उसे खाना खिलाकर बच्चों की तरह ही तौलिए से उसका मुंह पोंछा करती है। मैं कुछ देर बाद उठकर वहां से चला तो मिस पाल उसे गोदी में लिए हुए बाहर दरवाज़े तक मुझे छोड़ने निकल आई।

"पिंकी, अंकल को टा टा करो," वह उसकी आगे की एक टांग अपने हाथ से हिलाती हुई बोली, "करो टा टा टा टा !"

और जब मैं लम्बी छुट्टी से वापस आया तो मिस पाल वहां से त्याग-पत्र देकर जा चुकी थी। वह अपने बारे में लोगों को इतना ही बताकर गई थी कि वह कुल्लू के किसी गांव में रहने जा रही है। बाकी बातें लोगों की कल्पना ने अपने-आप जोड़ दी थीं।

बस ब्यास के साथ-साथ मोड़ काट रही थी और मेरा मन हो रहा था कि मैं लौटकर रायसन चला जाऊं। मैं तो मनाली में दस दिन ही अकेला रहकर ऊब गया था, और मिस पाल को वहां आए कई महीने हो चुके थे। मैं जानना चाहता था कि वह अकेली वहां कैसे रह रही है और नौकरी छोड़ने के बाद उसने क्या कुछ कर डाला है। वैसे एक अपरि-चित स्थान पर किसी पुराने परिचित से मिलने और बात करने का भी अपना एक आकर्षण होता है। बस जब कुल्लू पहुंचकर रुकी तो मैंने अपना सामान वहां उतरवाकर हिमाचल राज्य परिवहन के दफ्तर में रखवा दिया और रायसन के लिए पहली वापसी बस पकड़ ली। बस ने पन्द्रह-बीस मिनट में ही मुझे रायसन के बाजार में उतार दिया। मैंने वहां एक दुकानदार से पूछा कि मिस पाल कहां रहती है।

"मिस पाल कौन है भाई ?" दुकानदार ने अपने पास बैठे हुए युवक से पूछा।

"वह तो नहीं, वह कटे हुए बालोंवाली मिस ?"

"हां-हां, वही होगी।"

दुकान में और भी चार-पांच व्यक्ति बैठे थे। उन सबकी आंखें मेरी तरफ घूम गईं। मुझे लगा जैसे वे अपने मन में यह फैसला न कर पा रहे हों कि उस कटे हुए बालोंवाली मिस के साथ मेरा क्या रिश्ता हो सकता है।

"चलिए, मैं आपको उसके यहां छोड़ आता हूं", कहकर वह युवक दुकान से उतर आया। सड़क पर मेरे बराबर चलते हुए उसने पूछा, "क्यों भाई साहब, यह मिस क्या बिलकुल अकेली ही है या....?"

"हां, अकेली ही है!"

कुछ देर हम लोग चुपचाप चलते रहे। फिर उसने पूछा, "आप उनके क्या लगते हैं ?"

मेरी समझ में नहीं आया कि मैं उसे क्या उत्तर दूं। पल-भर सोचकर मैंने कहा, "मैं उनका रिश्तेदार नहीं हूं। उन्हें वैसे ही जानता हूं।"

सड़क से बाईं तरफ थोड़ा ऊपर जाकर हम लोग खुले मैदान में पहुंच गए। मैदान चारों तरफ से पेड़ों से घिरा था और बीच में पांच-छः जालीदार कॉटेज बने थे, जो बड़े-बड़े मुर्गी-खानों जैसे लगते थे। लड़का मुझे बताकर कि उनमें पहला कॉटेज मिस पाल का है, वहां से ही लौट गया। मैंने जाकर कॉटेज का दरवाजा खटखटाया।

"कौन है ?" अन्दर से मिस पाल की आवाज़ सुनाई दी।

"एक मेहमान है मिस पाल, दरवाज़ा खोलो।"

"दरवाज़ा खुला है, आ जाइए।"

मैंने दरवाज़े को धकेलकर खोल लिया और अन्दर चला गया। मिस

पाल ने एक चारपाई पर अपना गद्दा और तकिया लगा रखा था और उनके बीच उसी तरह लेटी थी जैसे दिल्ली में अपने तख्त पर लेटी रहा करती थी। उसके सिरहाने के पास एक खुली हुई पुस्तक उल्टी रखी थी —बर्ट्रेण्ड रसेल की 'कांक्वेस्ट ऑफ हेपीनेस'। मैं देखकर यह तय नहीं कर सका कि उस समय वह पुस्तक पढ़ रही थी या लेटी हुई सिर्फ छत की तरफ देख रही थी। मुझे देखते ही वह चौंककर बैठ गई।

"अरे तुम···?"

"हां, मैं। तुमने तो सोचा भी नहीं होगा कि गया हुआ आदमी फिर वापस भी आ सकता है।"

"सचमुच बहुत अजीब आदमी हो तुम! वापस ही आना था तो उसी समय क्यों नहीं उतर गए?"

"बजाय इसके कि मेरा शुक्रिया अदा करो, जो सात मील जाकर वापस चला आया हूं···।"

"शुक्रिया अदा तो मैं तब करती जो तुम उसी समय उतर जाते और मुझे बस में सीट ले लेने देते।"

मैंने एक ठहाका लगाया और फिर बैठने के लिए इधर-उधर जगह देखने लगा। वहां भी चारों तरफ लगभग वही बिखराव और अव्यवस्था थी जो दिल्ली में उसके घर में दिखाई दिया करती थी। हर चीज़ शायद हर दूसरी चीज़ की जगह काम में लाई जा रही थी। एक कुरसी ऊपर से नीचे तक मैले कपड़ों से लदी थी। दूसरी कुरसी पर कुछ रंग बिखरे थे और एक प्लेट रखी थी, जिसमें बहुत-सी कीलें पड़ी थीं।

"बैठो, मैं झट से तुम्हारे लिए चाय बनाती हूं," मिस पाल सहसा व्यस्त होकर उठने लगी।

"अभी मुझे बैठने को तो कहा नहीं और चाय की फिक्र पहले करने लगीं?" मैंने कहा, "तुम मुझे सिर्फ बैठने की जगह बता दो और चाय

की बात रहने दो। इस समय तुम्हारी वह 'बोहीमियन चाय' पीने का मेरा ज़रा भी मन नहीं है।"

"तो मत पियो। मुझे कौन यह झंझट करना अच्छा लगता है! बैठने की जगह मैं अभी बनाए देती हूं।" और कपड़े-अपड़े हटाकर उसने एक कुरसी खाली कर दी। बाईं तरफ एक बड़ी-सी मेज़ रखी थी, पर उसपर भी इतनी चीज़ें पड़ी थीं कि कहीं कुहनी रखने तक की जगह नहीं थी। मैंने बैठकर टांगें फैलाने की चेष्टा की तो पता चला कि कपड़ों के ढेर के नीचे मिस पाल ने अपने बनाए हुए खाके रख रखे हैं। मिस पाल फिर से अपने बिस्तर में तकियों के सहारे बैठ गई थी। गद्दे पर उसने वही झीना रेशमी कपड़ा बिछा रखा था जिसे देखकर मुझे चिढ़ हुआ करती थी। मेरा उस समय भी मन होने लगा कि उस कपड़े को निकालकर फाड़ दूं या कहीं आग में झोंक दूं। मैंने सिगरेट सुलगाने के लिए मेज़ से दियासलाई की डिबिया उठाई, मगर खोलते ही वापस रख दी। डिबिया में दियासलाइयां नहीं थीं एक गुलाबी-सा रंग भरा था। मैंने दियासलाई के लिए चारों तरफ नज़र दौड़ाई, मगर डिबिया कहीं दिखाई नहीं दी।

"दियासलाई उधर रसोई घर में होगी, मैं अभी लाती हूं" कहती हुई मिस पाल सहसा फिर उठी और कमरे से चली गई। मैं उतनी देर इधर-उधर देखता रहा। मुझे फिर वह दिन याद हो आया जिस दिन मैं मिस पाल के घर पर देर तक बैठा रहा था और उससे बातें करता रहा था। मिस पाल के पिंकी से 'टा टा' कराने की बात याद आ जाने से मैं अपने-आप ही हंस दिया।

मैं हंसा ही था कि मिस पाल दियासलाई की डिबिया लिए हुए आ गई। मेरा कमरे में अकेले बैठे हुए हंस देना शायद उसे बहुत अस्वाभाविक-सी बात लगी। वह सहसा गम्भीर हो गई।

"किसीने तुम्हें कुछ पिला-विला दिया है क्या?" उसने मज़ाक और

आक्षेप के मिले हुए स्वर में कहा।

"नहीं-नहीं, मैं तो अपने इस तरह लौटकर आने की बात पर ही हंस रहा हूं।" और जैसे अपने को ही अपने झूठ का विश्वास दिलाने के लिए मैंने अपनी हंसी की बनावटी नकल की और कहा, "मैं कहां सोच सकता था कि इस अनजान जगह पर तुमसे अचानक भेंट हो जाएगी? और तुम्हींने कहां सोचा होगा कि जो आदमी बस में बैठकर आगे चला गया था, वह घण्टा-भर बाद तुम्हारे कमरे में बैठा तुमसे बातें कर रहा होगा!"

और इस तरह विश्वास करके कि मैंने अपने हंसने के कारण की व्याख्या कर दी है, मैंने उससे पूछा, "मगर तुम्हारा पिंकी कहां है? यहां तो दिखाई नहीं दे रहा।"

पिंकी की बात से मिस पाल का चेहरा पहले से भी गम्भीर हो गया। मुझे लगा कि मिस पाल का चेहरा अब काफी रूखा लगने लगा है। उसकी आंखों में कुछ इस तरह की लाली भर रही थी, जैसे कई रात से वह ठीक से सोई न हो।

"पिंकी को यहां आकर एक रात सरदी लग गई थी," उसने अपनी उसांस को दबाते हुए कहा। "मैंने उसे कितनी ही गरम चीज़ें खिलाईं, मगर वह दो दिन में ही चलता बना।"

मैंने बात का विषय बदल दिया और उससे शिकायत करने लगा कि वह अपने बारे में बिना सबको ठीक से बतलाए ही चली आई, यह उसने अच्छा नहीं किया।

"लोग दफ्तर में अब भी मिस पाल की बातें करके हंसते होंगे?" मिस पाल ने ऐसे पूछा जैसे यह सवाल पूछनेवाली मिस पाल से भिन्न हो, जिसके बारे में सवाल पूछा गया था। मगर उसकी आंखों में यह जानने की बहुत उत्सुकता झलक रही थी कि मैं उसके सवाल का क्या जवाब देता हूं।

"लोगों की बातों को खामखाह इतना महत्त्व क्यों देती हो मिस पाल ?" मैंने कहा। "लोग किसीके बारे में ऐसी-वैसी बातें इसलिए करते हैं कि उनके जीवन में मनोरंजन के दूसरे साधन बहुत कम हैं। जब वह व्यक्ति पास से चला जाता है तो चार दिन में वे यह भी भूल जाते हैं कि संसार में उस व्यक्ति का अस्तित्व था भी या नहीं।"

मगर यह कहते-कहते ही मुझे अहसास हो आया कि मैंने यह कहकर गलती की है। मिस पाल शायद उस समय मुझसे यही सुनना चाहती थी कि लोग अब भी उसके बारे में उसी तरह बातें करते हैं और उसी तरह उसका मज़ाक उड़ाते हैं; शायद यह विश्वास उसके लिए अपने वर्तमान की सार्थकता स्वीकार करने के लिए ज़रूरी था।

"हो सकता है तुम्हारे सामने बातें न करते हों," मिस पाल बोली, "क्योंकि उन्हें पता है कि हम लोग...अम्...अ...आपस में मित्र रहे हैं। नहीं, वे कमीने लोग बात करने से कभी बाज आ सकते हैं ?"

मुझे अच्छा लगा कि मिस पाल ने मेरी बात पर विश्वास नहीं किया। उसने शायद समझा था कि मैं झूठमूठ उसे दिलासा देने की चेष्टा कर रहा हूं।

"हो सकता है, बातें करते भी हों," मैंने कहा, "मगर तुम अब उन लोगों की बात क्यों सोचती हो ? कम से कम तुम्हारे लिए तो उन लोगों का अब कोई अस्तित्व ही नहीं है।"

"मेरे लिए उन लोगों का अस्तित्व कभी था ही नहीं," मिस पाल नफरत से मुंह बिचकाकर बोली। "मैं उनमें से किसीको अपने पैर के अंगूठे के बराबर भी नहीं समझती।"

उसकी आंखों से लग रहा था जैसे अब भी वह उन लोगों से प्रतिशोध लेना चाहती हो। मैंने सोचा कि बातचीत का यह विषय ही बदल दिया जाए तो अच्छा है।

"तुम्हें पता है कि रमेश का फिर लखनऊ ट्रांसफर हो गया है ?" मैंने पूछा ।

"अच्छा ?"

मिस पाल ने उस सम्बन्ध में और कुछ भी जानने की उत्सुकता प्रकट नहीं की । फिर भी मैं उसे रमेश के ट्रांसफर का किस्सा विस्तार से सुनाने लगा । मिस पाल 'हूं-हां' करती रही, मगर यह साफ लग रहा था कि वह उस समय अपने ही अन्दर कहीं खोई हुई है ।

मैं रमेश का किस्सा सुना चुका तो कुछ क्षण हम दोनों ही चुप रहे। फिर मिस पाल बोली, "देखो, मैं तुमसे सच कहती हूं रणजीत, मुझे वहां उन लोगों के बीच एक-एक पल काटना असम्भव लगा करता था । मुझे तो वहां लगता था जैसे मैं नरक में रहती हूं । तुम्हें पता ही है कि मैं दफ्तर में किसीसे बात करना भी पसन्द नहीं करती थी ।"

मैं सुबह मनाली से बिना नाश्ता किए ही चला था, इसलिए मुझे भूख लग आई थी । मैंने बात को रोटी के प्रकरण पर ही ले आना उचित समझा । मैंने उससे पूछा कि उसने अपने खाने की क्या व्यवस्था कर रखी है—क्या खुद बनाती है, या कोई नौकर रख छोड़ा है ।

"अरे, तुम्हें भूख तो नहीं लगी ?" मिस पाल अब दफ्तर के माहौल से बाहर निकल आई । "अगर भूख लगी हो तो उधर मेरे साथ रसोई-घर में चलो । इस समय तो तुम्हें जो-कुछ बना है, उसीमें से थोड़ा-बहुत खा लेना पड़ेगा । अलबत्ता शाम को मैं तुम्हें ठीक से बनाकर खिलाऊंगी । मुझे तुम्हारे आने का पता होता तो मैं इस समय भी कुछ और बना रखती । यहां बाज़ार में कुछ मिलता ही नहीं। किसी दिन अच्छी सब्ज़ी मिल जाए तो समझो कि बड़े भाग्य का दिन है। कोई ही दिन होता है जिस दिन एकाध अण्डा मिल जाता है।...शाम को मैं तुम्हारे लिए ट्राउट मछली बनाऊंगी । यहां की ट्राउट बहुत अच्छी होती

है, मगर मिलती बहुत मुश्किल से है।"

मुझे खुशी हुई कि मैंने सफलतापूर्वक बात का विषय बदल दिया है। मिस पाल बिस्तर से उठकर खड़ी हो गई थी। मैंने भी कुरसी से उठते हुए कहा, "आओ, चलकर तुम्हारा रसोईघर तो देख लूं। इस समय मुझे कसकर भूख लगी है, इसलिए जो-कुछ भी बना है वह मुझे ट्राउट से अच्छा लगेगा। शाम को मैं जोगिन्दरनगर पहुंच जाऊंगा।"

मिस पाल दरवाज़े से बाहर निकलती हुई सहसा रुक गई।

"तुम्हें शाम को जोगिन्दर नगर ही पहुंचना है तो लौटकर क्यों आए थे? यह बात तुम गांठ में बांध लो कि आज मैं तुम्हें यहां से नहीं जाने दूंगी। तुम्हें पता है इन तीन महीनों में तुम मेरे यहां पहले ही मेहमान आए हो? मैं तुम्हें आज कैसे जाने दे सकती हूं?...तुम्हारे साथ कुछ सामान-आमान भी है या ऐसे ही चले आए थे?"

मैंने उसे बताया कि मैं अपना सामान हिमाचल राज्य परिवहन के दफ्तर में छोड़ आया हूं और उनसे कह आया हूं कि दो घंटे में मैं लौट आऊंगा।

"मैं अभी पोस्टमास्टर से वहां टेलीफोन करा दूंगी। कल तक तुम्हारा सामान वहां हिफाज़त से रखा रहेगा। कल सुबह की बस से जाकर हम सामान यहां ले आएंगे। तुम कम से कम एक सप्ताह यहां रहोगे। समझे? मुझे पता होता कि तुम मनाली में आए हुए हो तो मैं भी कुछ दिन के लिए वहां चली आती। आजकल तो मैं यहां...खैर...तुम पहले उधर तो आओ, नहीं भूख के मारे ही यहां से भाग जाओगे।"

मैं इस नई स्थिति के लिए तैयार नहीं था। उस सम्बन्ध में बाद में बात करने की सोचकर मैं उसके साथ रसोईघर में चला गया। रसोईघर में कमरे जितनी अराजकता नहीं थी, शायद इसलिए कि वहां सामान ही बहुत कम था। एक कपड़े की आराम कुरसी थी, जो लगभग

खाली ही थी—उसपर सिर्फ नमक का एक डिब्बा रखा हुआ था। शायद मिस पाल उसपर बैठकर खाना बनाती थी। खाना बनाने का और सारा सामान एक टूटी हुई मेज़ पर रखा था। कुरसी पर रखा हुआ डिब्बा उसने जल्दी से उठाकर मेज़ पर रख दिया और इस तरह मेरे बैठने के लिए जगह कर दी।

फिर मिस पाल ने जल्दी-जल्दी स्टोव जलाया और सब्ज़ी की पतीली उसपर रख दी। कलछी साफ नहीं थी, वह उसे साफ करने के लिए बाहर चली गई। लौटकर उसे कलछी को पोंछने के लिए कोई कपड़ा नहीं मिला। उसने अपनी कमीज़ से ही उसे पोंछ लिया और सब्ज़ी को हिलाने लगी।

"दो आदमियों का खाना है भी या दोनों को ही भूखे रहना पड़ेगा ?" मैंने पूछा।

"खाना बहुत है," मिस पाल झुककर पतीली में देखती हुई बोली।

"क्या-क्या है ?"

मिस पाल कलछी से पतीली में टटोलकर देखने लगी।

"बहुत कुछ है। आलू भी हैं, बैंगन भी हैं और शायद...शायद बीच में एकाध टींडा भी है। यह सब्ज़ी मैंने परसों बनाई थी।"

"परसों ?" मैं ऐसे चौंक गया जैसे मेरा माथा सहसा किसी चीज़ से टकरा गया हो। मिस पाल कलछी चलाती रही।

"हर रोज़ तो नहीं बना पाती हूं," वह बोली। "रोज़ बनाने लगूं तो बस खाना बनाने की ही हो रहूं। और अम्...अ...अपने अकेली के लिए रोज़ बनाने का उत्साह भी तो नहीं होता। कई बार तो मैं सप्ताह-भर का खाना एक-साथ बना लेती हूं और फिर निश्चिन्त होकर खाती रहती हूं। कहो तो तुम्हारे लिए मैं अभी ताज़ा बना दूं।"

"तो चपातियां भी क्या परसों की ही बनी रखी हैं ?" मैं अनायास

कुरसी से उठ खड़ा हुआ।

"आओ, इधर आकर देख लो, खा सकोगे या नहीं।" वह कोने में रखे हुए बेंत के सन्दूक के पास चली गई। मैं भी उसके पास पहुंच गया। मिस पाल ने सन्दूक का ढकना उठा दिया। सन्दूक में पच्चीस-तीस खुश्क चपातियां पड़ी थीं। सूखकर उन सबने कई तरह की आकृतियां धारण कर ली थीं। मैं सन्दूक के पास से आकर फिर कुरसी पर बैठ गया।

"तुम्हारे लिए ताज़ा चपातियां बना देती हूं," मिस पाल एक अपराधी की तरह देखती हुई बोली।

"नहीं-नहीं, जो कुछ बना रखा है वही खाएंगे," मैंने कहा। मगर अपनी इस भलमनसाहत के लिए मेरा मन अन्दर ही अन्दर कुढ़ गया।

मिस पाल सन्दूक का ढक्कन बन्द करके स्टोव के पास लौट गई।

"सब्ज़ी तीन दिन से ज़्यादा नहीं चलती," वह बोली। "बाद में मैं जैम, प्याज़ और नमक से काम चलाती हूं। यहां अलूचे बहुत मिल जाते हैं, इसलिए मैंने बहुत-सा अलूचे का जैम बना रखा है। खाकर देखो, अच्छा जैम है।...ठहरो, तुम्हें प्लेट देती हूं।"

वह फिर जल्दी से बाहर चली गई और कमरे से कीलोंवाली प्लेट खाली करके ले आई।

"गिलास में अम्...अ...," वह आकर बोली, "सरसों का तेल रखा है। पानी तुम प्याली में ही ले लोगे या...?"

ट्राउट मछली...खाना खाते समय और खाना खा चुकने के बाद भी मिस पाल के दिमाग पर ट्राउट मछली की बात ही सवार रही। जैसे भी हो, शाम को वह ट्राउट मछली बनाएगी। उसके हठ की वजह से मैंने उससे कह दिया था कि मैं अगले दिन सुबह तक वहां रह जाऊंगा। मिस पाल ने आगे का फैसला अगले दिन पर छोड़ दिया था। उसे शाम के लिए

कई और चीज़ों का इन्तज़ाम करना था, क्योंकि ट्राउट मछली आसानी से तो नहीं बन जाती। पहली चीज़ घी चाहिए था। डिब्बे में घी नाम-मात्र को ही था। प्याज़ और मसाला भी घर में नहीं था। मिट्टी का तेल भी चाहिए था। खाने के बाद हम लोग घूमने के लिए निकले तो पहले वह मुझे साथ बाज़ार में ले गई। हटवार के पास भी घी नहीं था। उसके लिए मिस पाल ने पोस्टमास्टर से अनुरोध किया कि वह अपने घर से उसे शाम के लिए आधा सेर घी भिजवा दे, अगले दिन कुल्लू से लाकर लौटा देगी। उससे उसने यह भी कहा कि वह अपने घर के थोड़े-से फ्रेंच बीन भी उतरवाकर उसे भेज दे, और कोई मछलीवाला उधर से गुज़रे तो उसके लिए सेर-भर ट्राउट ले रखे।

"सब्बरवाल साहब, मैं आपको बहुत तकलीफ देती हूं," वह चलने से पहले सात-आठ बार उसे धन्यवाद देकर बोली। "मगर देखिए, मेरे मेहमान आए हुए हैं, और यहां ट्राउट के अलावा कोई अच्छी चीज़ मिलती नहीं। देखती हूं, अगर बाली मुझे मिल जाए तो मैं उससे कहूंगी कि वह मुझे दरिया से एक मछली पकड़ दे। मगर बाली का कोई भरोसा नहीं। आप ज़रूर मेरे लिए ले रखिएगा। मैंने मिसेज़ एटकिन्सन को भी कहला दिया है। उन्होंने भी ले ली तो मैं आज और कल दोनों दिन बना लूंगी। ध्यान रखिएगा। कई बार मछलीवाला आवाज़ नहीं लगाता और ऐसे ही निकल जाता है। थैंक यू, थैंक यू वैरी मच!"

मेरे सामान के लिए उसने कुल्लू फोन भी करा दिया। अब सड़क पर चलती हुई वह सुबह के नाश्ते की बात करने लगी।

"रात को तो ट्राउट हो जाएगी, मगर सुबह नाश्ता क्या बनाया जाए? डबल रोटी यहां नहीं मिलेगी, नहीं तो मैं तुम्हें शहद के टोस्ट ही बनाकर खिलाती। अच्छा, खैर, देखो...।"

सड़क पर खुली धूप फैली थी और भेड़ों और पशम के बकरों का

रेवड़ हमारे आगे-आगे चल रहा था। साथ दो कुत्ते जीभ लपलपाते हुए पहरेदारी करते जा रहे थे। सामने से एक जीप के आ जाने से रेवड़ में खलबली मच गई। बकरवाल भेड़ों को पहाड़ की तरफ धकेलने लगे। एक भेड़ का बच्चा ढलान से फिसल गया और नीचे से सिर उठाकर मिमियाने लगा। किसी बकरवाल का ध्यान उसकी तरफ नहीं गया तो मिस पाल सहसा परेशान हो उठी, "ए भाई, देखो वह बच्चा नीचे जा गिरा है।...बकरीवाले, एक बच्चा नीचे खाई में गिर गया है, उसे उठा लाओ। ए भाई!"

एक दिन पहले वर्षा हुई थी, इसलिए ब्यास खूब चढ़ा हुआ था। नुकीली चट्टानों से छिलता और कटता हुआ पानी शोर करता हुआ बह रहा था। सामने दरिया पार करने का झूला था। झूले की चर्खियां घूम रही थीं, रस्सियां इकट्ठी हो रही थीं और झूला दो व्यक्तियों को लिए हुए इस पार से उस पार जा रहा था। सहसा झूले में बैठे हुए दोनों व्यक्ति 'ही-ही-ही-ही' करके हंसने लगे, जैसे किसीको चिढ़ा रहे हों। फिर उनमें से एक ने ज़ोर से छींक दिया। झूला उस पार पहुंच गया और वे व्यक्ति उसी तरह हंसते और छींकते हुए उससे उतर गए। झूला छोड़ दिया गया और उसकी रस्सियां इस सिरे से उस सिरे तक आधी गोलाइयों में फैल गईं। जो व्यक्ति उधर उतरे थे, वे उस किनारे से फिर एक बार ज़ोर से हंसे। तभी झूला खींचनेवालों में एक लड़का मचान से उतरकर हमारे पास आ गया। वह ऐसे बात करने लगा जैसे अभी-अभी कोई दुर्घटना होकर हटी हो।

"मिस साहब," उसने कहा, "यह वही सुदर्शन है, जिसने आपके कुत्ते को कुछ खिलाया था। यह अब भी शरारत करने से बाज़ नहीं आता।"

उन व्यक्तियों के हंसने और छींकने का मिस पाल पर उतना असर

नहीं हुआ था जितना उस लड़के की बात का हुआ। उसका चेहरा एकदम से उतर गया और आवाज़ खुश्क हो गई।

"यह उधर के गांव का आदमी है न ?" उसने पूछा।

"हां, मिस साहब !"

"तुम पोस्टमास्टर को बताना। वे अपने आप इसे ठीक कर लेंगे।"

"मिस साहब, यह हमसे कहता है कि यह मिस साहब…!"

"तुम इस वक्त जाओ अपना काम करो," मिस पाल उसे झिड़ककर बोली। "पोस्टमास्टर से कहना, वे इसे एक दिन में ठीक कर देंगे।"

"मगर मिस साहब…!"

"जाओ, फिर कभी उधर आकर बात करना।"

लड़के की समझ में नहीं आया कि मिस साहब से बात करने में उस समय उससे क्या अपराध हुआ है। वह सिर लटकाए हुए चुपचाप वहां से लौट गया।

कुछ देर हम लोग वहीं रुके रहे। मिस पाल जैसे थकी हुई-सी सड़क के किनारे एक बड़े-से पत्थर पर बैठ गई। मैं दरिया के उस पार पहाड़ की चोटी पर उगे हुए वृक्षों की लम्बी पंक्ति को देखने लगा, जो नीले आकाश और गुब्बारे जैसे सफेद बादलों के बीच खिंची हुई लकीर-सी लगती थी। दरिया के दोनों तरफ पुल के सलेटी खम्भे खड़े थे, जिनपर अभी पुल नहीं बना था। खम्भों के आसपास से झड़कर थोड़ी-थोड़ी मिट्टी दरिया में गिर रही थी। मैंने उधर से आंखें हटाकर मिस पाल की तरफ देखा। मिस पाल मेरी तरफ देख रही थी। शायद वह जानना चाहती थी कि झूलेवाले लड़के की बात का मेरे मन पर क्या प्रभाव पड़ा है।

"तो आगे चलें ?" मुझसे आंखें मिलते ही उसने पूछा।

"हां चलो।"

मिस पाल उठ खड़ी हुई। उसकी सांस कुछ-कुछ फूल रही थी। वह

चलती हुई मुझे बताने लगी कि वहां के लोगों में कितनी तरह के अन्ध-विश्वास है। जब पिकी बीमार हुआ तो वहां के लोगों ने सोचा था कि किसीने उसे कुछ खिला-पिला दिया है।

"ये अनपढ़ लोग हैं। मैंने इनकी बातों का विरोध भी नहीं किया। ये लोग अपने अन्ध-विश्वास एक दिन में थोड़े ही छोड़ सकते हैं! इस चीज़ में जाने अभी कितने बरस लगेंगे!"

और रास्ते में चलते हुए वह बार-बार मेरी तरफ देखती रही कि मुझे उसकी बात पर विश्वास हुआ है या नहीं। मैंने सड़क से एक छोटा-सा पत्थर उठा लिया था और चुपचाप उसे उछालने लगा था। काफी देर तक हम लोग खामोश चलते रहे। वह खामोशी मुझे अस्वाभाविक लगने लगी तो मैंने मिस पाल से वापस घर चलने का प्रस्ताव किया।

"चलो, चलकर तुम्हारी बनाई हुई नई तसवीरें ही देखी जाएं," मैंने कहा। "इन तीन-चार महीनों में तो तुमने काफी काम कर लिया होगा।"

"पहले घर चलकर एक-एक प्याली चाय पीते हैं," मिस पाल बोली। "सचमुच इस समय मैं चाय की एक गरम प्याली के लिए ज़िन्दगी की कोई भी चीज़ कुर्बान कर सकती हूं। मेरा तो मन था कि घर से चलने से पहले ही एक-एक प्याली पी लेते, मगर फिर मैंने कहा कि पोस्टमास्टर से कहने में देर हो जाएगी तो मछलीवाला निकल जाएगा।"

इस बात ने मेरे मन को थोड़ा गुदगुदा दिया कि तीन महीने में आया हुआ पहला मेहमान उस समय मिस पाल के लिए अपनी तसवीरों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।

लौटकर कॉटेज में पहुंचते ही मिस पाल चाय बनाने में व्यस्त हो गई। वह आते हुए काफी थक गई थी, क्योंकि ज़रा-सी चढ़ाई चढ़ने में ही उसकी सांस फूलने लगती थी। मगर वह ज़रा देर भी सुस्ताने के लिए नहीं रुकी। चाय के लिए उसकी यह व्यस्तता मुझे बहुत अस्वाभाविक

लगी, शायद इसलिए कि मुझे खुद चाय की ज़रूरत महसूस नहीं हो रही थी। मिस पाल इस तरह चम्मचों और प्यालियों को ढूंढ़ने के लिए परेशान हो रही थी, जैसे उसके दस मेहमान चाय का इन्तज़ार कर रहे हों और उसे समझ न आ रहा हो कि कैसे जल्दी से सारा इन्तज़ाम करे।

मैं घूमकर कमरे में और बरामदे में लगी हुई तसवीरों को देखने लगा। जिस-जिस तसवीर पर भी मेरी नज़र पड़ी, मुझे लगा वह मेरी पहले की देखी हुई है। कुछ बड़ी तसवीरें थीं जो मिस पाल पंजाब के एक मेले से बनाकर लाई थी। वही अजीब-अजीब-से चेहरे थे, जिनपर हम लोग एक बार फब्तियां कसते रहे थे। जाने क्यों मिस पाल अपने चित्रों के लिए सदा ऐसे ही चेहरे चुनती थी जो किसी न किसी रूप में विकृत हों! मैंने सारा कमरा और बरामदा घूम लिया। दो-एक अधूरी तसवीरों को छोड़कर मुझे एक भी नई चीज दिखाई नहीं दी। मैंने रसोईघर में जाकर मिस पाल से पूछा कि उसकी नई तसवीरें कहां हैं।

"अजी छोड़ो भी", मिस पाल प्यालियां धोती हुई बोली। "चाय की प्याली पीकर हम लोग ऊपर की तरफ घूमने चलते हैं। ऊपर एक बहुत पुराना मन्दिर है। वहां का पुजारी तुम्हें ऐसे-ऐसे किस्से सुनाएगा कि तुम सुनकर हैरान रह जाओगे। एक दिन वह बता रहा था कि यहां कुछ मन्दिर ऐसे हैं, जहां लोग पहले तो देवता से वर्षा के लिए प्रार्थना करते हैं, मगर बाद में अगर देवता वर्षा नहीं देता तो उसे हिडम्बा के मन्दिर में ले जाकर रस्सी से लटका देते हैं। है नहीं मजेदार बात? जो देवता तुम्हारा काम न करे, उसे फांसी लगा दो। मैं कहती हूं रणजीत, यहां लोगों में इतने अन्ध-विश्वास हैं, इतने अन्ध-विश्वास हैं कि क्या कहा जाए! ये लोग अभी तक जैसे कौरवों-पाण्डवों के ज़माने में ही जीते हैं, आज के ज़माने से इनका कोई सम्बन्ध ही नहीं है।"

और एक बार उडती नज़र से मुझे देखकर वह चीनी ढूंढ़ने में व्यस्त

हो गई। "अरे चीनी कहां चली गई ? अभी हाथ में थी, और अभी न जाने कहां रख दी ? देखो कैसी भुलक्कड़ हो गई हूं ! मेरा तो बस एक ही इलाज है कि कोई हाथ में छड़ी लेकर मुझे ठीक करे। यह भी कोई रहने का ढंग है जैसे मैं रहती हूं ?"

"तुमने यहां के कुछ लैंडस्केप नहीं बनाए ?" मैंने पूछा।

"तसवीरें तो बहुत-सी शुरू कर रखी हैं, पर अभी तक पूरी नहीं कर सकी", मिस पाल जैसे उस मुश्किल स्थिति से बचने का प्रयत्न करती हुई बोली। "अब किसी दिन लगकर सबकी सब तसवीरें पूरी करूंगी। तारपीन का तेल भी खत्म हो चुका है, किसी दिन जाकर लाना है। कई दिनों से सोच रही थी कि मण्डी जाकर कैनवस और रंग भी ले आऊं, पर यूं ही आलस कर जाती हूं। कुछ ड्राइंग पेपर भी जिल्द कराने हैं। अब जाऊंगी किसी दिन और सारे काम एक साथ ही कर आऊंगी।"

बात करते हुए मिस पाल की आंखें झुकी जा रही थीं, जैसे वह अपने ही सामने किसी चीज़ के लिए अपराधी हो, और लगातार बात करके अपने अपराध के अनुभव को छिपाना चाहती हो। मैं चुप रहकर उसे चाय में चीनी मिलाते देखता रहा। उसे देखते हुए उस समय मेरे मन में कुछ वैसी उदासी भरने लगी जैसी एक निर्जन समुद्र-तट पर या ऊंची पहाड़ियों से घिरी हुई किसी एकान्त पथरीली घाटी में जाकर अनायास मन में भर जाती है।

"कल से एक तो मैं अपने घर को ठीक करूंगी", मिस पाल क्षण-भर बाद फिर उसी तरह बिना रुके बात करने लगी, "एक तो घर का सारा सामान ठीक ढंग से लगाना है। तुम्हें पता है, मैंने कितने चाव से दिल्ली में अपने कमरे के लिए जाली के पर्दे बनवाए थे ? वे पर्दे यहां ज्यों के त्यों बक्स में बन्द पड़े हैं; मेरा लगाने को मन ही नहीं हुआ। मैं कल ही तरखान से कहकर पर्दों के लिए चौखटे बनवाऊंगी। खाने-पीने

का थोड़ा-बहुत सामान भी घर में रखना ही चाहिए ; बिस्कुट, मक्खन, डबल रोटी और अचार का होना तो बहुत ही ज़रूरी है। जो चीज़ें कुल्लू से मिल जाती हैं वे तो मैं लाकर रख ही सकती हूं।...तारपीन का तेल भी मुझे कुल्लू से ही मिल जाएगा।"

उसने चाय की प्याली मेरे हाथ में दे दी तो भी मेरे मुंह से कोई बात नहीं निकली, और मैं चुपचाप छोटे-छोटे घूंट भरने लगा। मेरे मन को उस समय एक तरह की जड़ता ने घेर लिया था। कहां मिस पाल के बारे में दिल्ली के लोगों से सुनी हुई वे सब बातें और कहां उसके जीवन की यह एकान्त विडम्बना !

ट्राउट मछली ! मिस पाल की सारी परेशानी के बावजूद उस दिन उसे ट्राउट नहीं मिल सकी। पोस्टमास्टर ने बताया कि मछलीवाला उस दिन आया ही नहीं। मिस पाल के बहुत-बहुत खुशामद करने पर भी मकान-मालकिन का चौकीदार बाली दरिया से मछली पकड़ने के लिए राज़ी नहीं हुआ। उसने कहा कि वह अपनी छड़ी पालिश कर रहा है, उसे फुरसत नहीं है। मिसेज़ एटकिन्सन के बच्चों ने एक मछली पकड़ी थी। मगर उसके पति ने उस दिन खास तौर पर मछली की कतलियों के लिए कहा था, इसलिए वह अपनी मछली मिस पाल को नहीं दे सकती थी। हां, पोस्टमास्टर ने फ्रेन्च बीन ज़रूर भेज दिए। चावल और सूखे फ्रेन्च बीन ! रात की रोटी के लिए मिस पाल का सारा उत्साह ठण्डा पड़ गया। खाना बनाने में उसका मन भी नहीं लगा, जिससे चावल थोड़ा नीचे लग गए। खाना खाते समय मिस पाल बस अफसोस ही प्रकट करती रही।

"मैं बहुत बदकिस्मत हूं रणजीत, हर लिहाज़ से मैं बहुत ही बद-किस्मत हूं", खाना खाने के बाद हम लोग बाहर मैदान में कुरसियां निकालकर बैठ गए तो उसने कहा। वह सिर के पीछे हाथ रखे आकाश

की ओर देख रही थी। बारहीं या तेरहीं की रात होने से आकाश में तीन तरफ़ खुली चांदनी फैली थी। ब्यास की आवाज़ वातावरण में एक गूंज पैदा कर रही थी। वृक्षों की सरसराहट के अतिरिक्त मैदान की घास से भी एक धीमी-सी सरसराहट निकलती प्रतीत होती थी। हवा तेज़ थी और सामने पहाड़ के पीछे से उठता हुआ बादल धीरे-धीरे चांद की तरफ़ सरक रहा था।

"क्या बात है मिस पाल, तुम इस तरह गुम-सुम क्यों हो रही हो ?" मैंने कहा। "चावल थोड़े खराब हो गए, तो इसमें इस तरह उदास होने की क्या बात है !"

मिस पाल सामने पहाड़ की धुंधली रेखा को देखती रही, जैसे उसमें कोई चीज़ खोज रही हो।

"मैं सोचती हूं रणजीत कि मेरे जीने का कोई भी अर्थ नहीं है", उसने कहा।

और वह मुझे अपने आरम्भिक जीवन की कहानी सुनाने लगी। उसे बहुत बड़ी शिकायत थी कि आरम्भ में अपने घर में भी उसे ज़रा सुख नहीं मिला, यहां तक कि अपने माता-पिता का स्नेह भी उसे नहीं मिला। उसकी मां ने—उसकी अपनी मां ने—भी उसे प्यार नहीं किया। इसी वजह से पन्द्रह साल पहले वह अपना घर छोड़कर नौकरी करने के लिए निकल आई थी।

"सोचो, मां को मेरा घर में होना ही बुरा लगता था। पिताजी को मेरे संगीत सीखने से चिढ़ थी। वे कहा करते थे कि मेरा घर घर है, रंडीखाना नहीं। भाइयों का जो थोड़ा-बहुत प्यार था, वह भी भाभियों के आने के बाद छिन गया। मैंने आज तक कितनी-कितनी मुश्किल से अपनी अम्···अ···पवित्रता को बचाया है, यह मैं ही जानती हूं। तुम सोच सकते हो कि एक अकेली लड़की के लिए यह कितना मुश्किल होता

है। मेरा लाहौर की तरफ घूमने जाने को मन था; वहां की कुछ तसवीरें बनाना चाहती थी, मगर मैं वहां नहीं गई, क्योंकि मैं सोचती थी कि मर्द की पशु-शक्ति के सामने अम्…अ…मैं अकेली क्या कर सकूंगी.। फिर, तुम्हें पता है कि डिपार्टमेंट के लोग वहां मेरे बारे में कैसी बुरी-बुरी बातें किया करते थे। इसीलिए मैं कहती हूं कि मुझे वहां के एक-एक आदमी से नफरत है। वे तुम्हारे बुखारिया और मिर्ज़ा और ज़ोरावरसिंह। मैं तो कभी ऐसे लोगों के साथ बैठकर एक प्याली चाय भी पीना पसन्द नहीं करती थी। तुम्हें याद है, एक बार जब ज़ोरावरसिंह ने मुझसे कहा था…"

और फिर वह दफ्तर के जीवन की कई छोटी-छटी घटनाएं दोहराने लगी। जब मैंने देखा कि वह फिर से उसी वातावरण में जाकर खामखाह अपना गुस्सा भड़का रही है तो मैंने उससे फिर कहा कि वह अब दफ्तर के लोगों के बारे में न सोचे, अपने संगीत और अपने चित्रों की बात ही सोचे।

"तुम यहां रहकर कुछ अच्छी-अच्छी चीज़ें बना लो, फिर दिल्ली आकर अपनी प्रदर्शनी करना", मैंने कहा। "जब लोग तुम्हारी चीज़ें देखेंगे और तुम्हारा नाम सुनेंगे तो अपने-आप तुम्हारी कद्र करेंगे।"

"न, मैं प्रदर्शनी-प्रदर्शनी के किसी चक्कर में नहीं पड़ूंगी" मिस पाल उसी तरह सामने की तरफ देखती हुई बोली। "तुम जानते ही हो इन सब चीज़ों में कितनी पॉलिटिक्स चलती है। मैं उस पॉलिटिक्स में नहीं पड़ना चाहती। मेरे पास अभी तीन-चार हज़ार रुपये हैं, जिनसे मेरा काफी दिन गुज़ारा चल जाएगा। जब ये रुपये चुक जाएंगे, तो…और वह जैसे कुछ सोचती हुई चुप कर गई।

मैं आगे की बात सुनने के लिए बहुत उत्सुक था। मगर मिस पाल कुछ देर बाद कंधे हिलाकर बोली, "…तो भी कुछ न कुछ हो ही जाएगा।

अभी वह वक्त आए तो सही।"

बादल ऊंचा उठ रहा था और वातावरण में ठंढक बढ़ती जा रही थी। जंगल की तरफ से आती हुई हवा की गूंज शरीर में बार-बार सिहरन भर देती थी। साथ के कॉटेज में रेडियो पर पश्चिमी संगीत चल रहा था। उससे आगे के कॉटेज में लोग खिलखिलाकर हंस रहे थे। मिस पाल अपनी आंखें मूंदे हुए मुझे बताने लगी कि होशियारपुर में उसने भृगुसंहिता से अपनी कुण्डली निकलवाई थी। उस कुण्डली के फल के अनुसार इस जन्म में उसपर यह शाप है कि उसे कोई सुख नहीं मिल सकता—न धन का न ख्याति का, न प्यार का। इसका कारण भी भृगुसंहिता में दिया हुआ था। अपने पिछले जन्म में वह सुन्दर लड़की थी और नृत्य, संगीत आदि कलाओं में बहुत पटु थी। उसके पिता बहुत धनी थे और वह उनकी अकेली संतान थी। जिस व्यक्ति से उसका ब्याह हुआ वह बहुत सुन्दर और धनी था। "मगर मुझे अपनी सुन्दरता और अपनी कला का बहुत मान था, इसलिए मैंने अपने पति का आदर नहीं किया। कुछ ही दिनों में वह बेचारा दुःखी होकर इस संसार से चल बसा। इसीलिए मुझपर अब यह शाप है कि इस जन्म में मुझे सुख नहीं मिल सकता।"

मैं चुप रहकर उसे देखता रहा। अभी दिन में ही वह वहां के लोगों के अंध विश्वासों की चर्चा करती हुई उनका मज़ाक उड़ा रही थी। सहसा मिस पाल भी बोलते-बोलते चुप कर गई और उसकी आंखें मेरे चेहरे पर स्थिर हो गई। उसके लिपस्टिक से रंगे हुए ओठों की तह में जैसे उस समय कोई चीज़ कांप रही थी। काफी देर हम लोग चुप बैठे रहे। बादल ने चांद को छा लिया था और चारों तरफ गहरा अंधेरा हो रहा था। सहसा साथ के कॉटेज की बत्ती भी बुझ गई, जिससे अंधेरा और भी स्याह और और भी गहरा लगने लगा।

मिस पाल उसी तरह मेरी तरफ देख रही थी। मुझे महसूस होने

लगा कि मेरे आसपास की हवा कुछ भारी हो रही है। मैं सहसा कुरसी पीछे सरकाकर उठ खड़ा हुआ

"मेरा खयाल है, अब रात काफी हो गई है," मैंने कहा, "इसलिए अब चलकर सो रहा जाए। और बातें अब सुबह होंगी।"

"हां-हां" मिस पाल भी अपनी कुरसी से उठती हुई बोली, "मैं अभी चलकर बिस्तर बिछा देती हूं। तुम बताओ, तुम्हारा बिस्तर बरामदे में बिछा दूं या..."

"हां, बरामदे में ही बिछा दो। अन्दर काफी गरमी होगी।"

"देख लो, रात को ठंड हो जाएगी।"

"कोई बात नहीं, बरामदे में हवा आती रहेगी तो अच्छा लगेगा।"

और बरामदे में लेटे हुए मैं देर तक जाली के बाहर देखता रहा। बादल पूरे आकाश में छा गया था और दरिया का शब्द बहुत पास आया-सा लगता था। जाली से लगा हुआ मकड़ी का जाला हवा से हिल रहा था। पास ही कोई चूहा कोई चीज़ कुतर रहा था। अन्दर कमरे से बार-बार करवट बदलने की आवाज़ सुनाई दे जाती थी।

"रणजीत!" अन्दर से आवाज़ आई तो मेरे सारे शरीर में एक सिहरन भर गई।

"मिस पाल!"

"सरदी तो नहीं लग रही?"

"नहीं, बल्कि हवा है, इसलिए अच्छा लग रहा है।"

और तभी टप्-टप्-टप्-टप् मोटी-मोटी बूंदें पड़ने लगीं। पानी की बौछार मेरे बिस्तर पर आने लगी तो मैंने करवट बदल ली। बरामदे की बत्ती मैंने जलती रहने दी थी, इसलिए कई चीजें इधर-उधर बिखरी नज़र आ रही थीं। बिस्तर बिछाते समय मिस पाल को घर की काफी उथल-पुथल करनी पडी थी। मेरी चारपाई के पास ही एक तिपाई

औंधी पड़ी थी और उससे ज़रा आगे तसवीरों के कुछ-एक फ्रेम रास्ते में गिरे थे। सामने के कोने में मिस पाल के ब्रश और कपड़े एक ढेर में उलझे हुए पड़े थे।

अन्दर की चारपाई चिरमिराई और लकड़ी के फर्श पर पैरों की धप्-धप् आवाज़ सुनाई देने लगी। फिर सुराही से चुल्लू में पानी पीने की आवाज़ आने लगी।

"रणजीत !"

"मिस पाल !"

"प्यास तो नहीं लगी ?"

"नहीं।"

"अच्छा, सो जाओ।"

कुछ देर मुझे लगता रहा जैसे मेरे आस-पास एक बहुत तेज़ सांस चल रही है जो धीरे-धीरे दबे पैरों, सारे वातावरण पर अधिकार करती जा रही है, और आसपास की हर चीज़ अपने पर उसका दबाव महसूस कर रही है। पानी की बौछार कुछ धीमी पड़ने लगी तो मैंने फिर से जाली की तरफ करवट बदल ली और पहले की तरह ही बाहर देखने लगा। तभी पास ही झन्न से किसी चीज़ के गिरने की आवाज़ सुनाई दी।

"क्या गिरा है रणजीत ?" अन्दर से आवाज़ आई।

"पता नहीं, शायद किसी चूहे ने कुछ गिरा दिया है।"

"सचमुच मैं यहां चूहों से बहुत तंग आ गई हूं।"

मैं चुप रहा। अन्दर की चारपाई फिर चिरमिराई।

"अच्छा, सो जाओ !"

सारी रात पानी पड़ता रहा। सुबह-सुबह वर्षा थम गई, मगर आकाश साफ नहीं हुआ। सुबह उठकर चाय के समय तक मेरी मिस पाल

से खास बात नहीं हुई। चाय पीते समय भी मिस पाल अधूरे-अधूरे टुकड़ों में ही बात करती रही। मैंने उससे कहा कि मैं अब पहली बस से चला जाऊंगा तो उसने एक बार भी मुझसे रुकने के लिए आग्रह नहीं किया। यूं साधारण बातचीत में भी मिस पाल काफी तकल्लुफ बरत रही थी जैसे किसी बिलकुल अपरिचित व्यक्ति से बात कर रही हो। मुझे उसका सारा व्यवहार बहुत अस्वाभाविक लग रहा था। वह जैसे बात न करने के लिए ही अपने को छोटे-छोटे कामों में व्यस्त रख रही थी। मैंने दो-एक बार उससे हल्के-से मज़ाक करने का भी प्रयत्न किया जिससे तनाव हट जाए और मैं उससे ठीक से विदा लेकर जा सकूं, मगर मिस पाल के चेहरे पर हल्की-सी मुस्कराहट भी नहीं आई।

अच्छा तो मिस पाल, अब चलने की बात की जाए", आखिर मैंने कहा, "तुम कल कह रही थी कि तुम भी कुल्लू तक साथ ही चलोगी। तो अच्छा होगा कि तुम आज ही वहां से अपना सारा सामान भी ले आओ। बाद में तुम फिर आलस कर जाओगी।"

"नहीं, मैं आलस नहीं करूंगी", मिस पाल बोली, "किसी दिन जाकर जो-जो कुछ लाना है सब ले आऊंगी।"

और फिर बरामदे में बिखरे हुए कपड़ों को बिना मतलब ही उठाकर इधर से उधर रखते हुए उसने कहा, "आज बरसात का दिन है, इसलिए आज नहीं जाऊंगी। कल या परसों किसी समय देखूंगी। लाने के लिए कितनी ही चीज़ें हैं, इसलिए अच्छी तरह सब सोचकर जाना चाहिए। आज घिरा हुआ दिन है, इसलिए आज नहीं...।"

"घिरा हुआ दिन है तो क्या घर का सामान नहीं आएगा?" मैंने अपने आग्रह से उसे सुलझाने की चेष्टा करते हुए कहा। "तुम मुझे बताओ कि घी और तारपीन के डिब्बे कहां रखे हैं। कोई बड़ा थैला हो तो वह भी साथ में ले लो। फुटकर चीज़ें उसमें आ जाएंगी। यहां से जो

भी बस मिलेगी, उसमें हम लोग साथ-साथ चले चलेंगे। मैं कुल्लू से बारह बजे की बस पकड़कर आगे चला जाऊंगा। तुम्हें तो उधर से लौटने के लिए सारा दिन बसें मिलती रहेंगी।"

मैं जान-बूझकर इस तरह बात कर रहा था जैसे मिस पाल का साथ चलना निश्चित ही हो, हालांकि मैं जानता था कि वह टालने का पूरा प्रयत्न करेगी। मिस पाल इधर से उधर जाती हुई ढूंढ़-ढूंढ़कर अपने करने के लिए काम निकाल रही थी। उसके चेहरे से लग रहा था जैसे मेरी बातें उसे बिलकुल व्यर्थ लग रही हों और वह जल्द-अज़-जल्द अपने एकांत में लौट जाना चाहती हो।

"देखो, कभी-कभी यहां से बस में एक भी सीट नहीं मिलती," उसने कहा, "दो-दो सीटें मिलना तो बहुत ही मुश्किल है। तुम मेरी वजह से अपनी बारह बजे की बस क्यों मिस करते हो? तुम चले जाओ, मैं कल या परसों जाकर जो कुछ भी मुझे लाना है ले आऊंगी।" और जैसे सहसा कोई काम याद आ जाने से वह जल्दी से अपना चेहरा दूसरी तरफ हटाए हुए कमरे में चली गई। कुछ देर में वह पेटीकोट लिए हुए कमरे से बाहर आई। पेटीकोट को टिड्डियां काट गई थीं। उसने जैसे नुकसान की परेशानी की वजह से ही चेहरा सख्त किए हुए उसे एक तरफ कोने में फेंक दिया और किसी तरह कठिनाई से बोली, "मैंने तुमसे कह दिया है कि तुम चले जाओ। तुम्हें पता है कि मुझे तो अकेली को ही दो सीटें चाहिएं।"

"ये सब बहाने तुम रहने दो," मैंने कहा। "एक बस में जगह नहीं मिलेगी तो दूसरी में मिल जाएगी। तुम इधर आकर मुझे बताओ कि वे डिब्बे कहां रखे हैं।"

मिस पाल शायद ज्यादा बात नहीं करना चाहती थी, इसलिए उसने मेरी बात का और विरोध नहीं किया।

"अच्छा तुम बैठो, मैं अभी ढूंढ़ती हूं," उसने कहा और आंखें बचाती हुई रसोईघर में चली गई।

पहली बस में सचमुच हम लोगों को जगह नहीं मिली। ड्राइवर ने बस वहां रोकी ही नहीं, और हाथ के इशारे से कह दिया कि बस में जगह नहीं है। दूसरी बस में भी जगह नहीं थी, मगर किसी तरह कह-कहाकर हमने उसमें अपने लिए जगह बना ली। मगर हम कुल्लू काफी देर से पहुंचे, क्योंकि रात की बरसात से एक जगह सड़क टूट गई थी और उसकी मरम्मत की जा रही थी। हमारे कुल्लू पहुंचने के लगभग साथ ही बारह बजे की बस भी मनाली से आ पहुंची। पौने बारह हो चुके थे। मैंने अन्दर जाकर अपने सामान का पता किया, फिर बाहर मिस पाल के पास आ गया। मिस पाल ने खाली डिब्बे अपने दोनों हाथों में संभाल रखे थे। मैं डिब्बे उसके हाथों से लेने लगा तो उसने अपने हाथ पीछे हटा लिए।

"चलो पहले बाजार में चलकर तुम्हारा सामान खरीद लें", मैंने कहा।

"अब सामान की बात रहने दो," उसने कहा। "तुम्हारी बस आ गई है, तुम इसमें चले जाओ। सामान तो मैं किसी भी समय खरीद लूंगी। तुम्हें इसके बाद फिर किसी बस में जगह नहीं मिलेगी। दो बजे की बस मनाली से ही भरी हुई आती है। तुम्हारा एक दिन और यहां खराब होगा।"

"दिन खराब होने की क्या बात है," मैंने कहा। "पहले चलकर बाज़ार से सामान खरीद लेते हैं। अगर आज सचमुच किसी बस में जगह नहीं मिली तो मैं तुम्हारे साथ लौट चलूंगा और कल किसी बस से चला जाऊंगा। मुझे वापस पहुंचने की ऐसी कोई जल्दी नहीं है।"

"नहीं तुम चले जाओ," मिस पाल हठ के साथ बोली। "अपने लिए

खामखाह मैं तुम्हें क्यों परेशान करूं ? अपना सामान तो मैं जब कभी भी ले लूंगी।"

"मगर मुझे लगता है कि आज तुम ये डिब्बे इसी तरह लिए हुए ही लौट जाओगी।"

"अरे नहीं," मिस पाल की आंखें उमड़ आईं और वह अपने आंसुओं को रोकने के लिए दूसरी तरफ देखने लगी। "तुम समझते हो मैं अपने शरीर की देखभाल ही नहीं करती। अगर न करती तो यह इतना शरीर ऐसे ही होता ?...लाओ पैसे दो, मैं तुम्हारा टिकट ले आती हूं। देर करोगे तो इस बस में भी जगह नहीं मिलेगी।"

"तुम इस तरह ज़िद क्यों करती हो मिस पाल ? मुझे जाने की सचमुच ऐसी कोई जल्दी नहीं है," मैंने कहा।

"मैंने तुमसे कहा है, तुम पैसे निकालो, मैं तुम्हारा टिकट ले आऊं। मगर नहीं, तुम रहने दो। कल का तुम्हारा टिकट मेरी वजह से खराब हुआ था। मैं फिर तुमसे पैसे किसलिए मांग रही हूं ?"

और वह डिब्बे वहीं रखकर झटपट टिकट-घर की तरफ बढ़ गई।

"ठहरो, मिस पाल," मैंने असमंजस में अपना बटुआ जेब से निकाल लिया।

"तुम रुको, मैं अभी आ रही हूं। तुम उतनी देर में अपना सामान निकलवाकर ऊपर रखवाओ।"

मेरा मन उस समय न जाने कैसा हो रहा था, फिर भी मैंने अन्दर से अपना सामान निकलवाया और बस की छत पर रखवा दिया। मिस पाल तब तक टिकट-घर के बाहर ही खड़ी थी। शनिवार होने के कारण उस दिन स्कूल में जल्दी छुट्टी हो गई थी और बहुत-से बच्चे बस्ते लटकाए सुलतानपुर की पहाड़ी से नीचे आ रहे थे। कई बच्चे बस की

सवारियों को देखने के लिए वहां आसपास जमा हो रहे थे। मिस पाल उस समय प्याज़ी रंग की सलवार-कमीज़ पहने थी और ऊपर काला दुपट्टा लिए थी। उन कपड़ों की वजह से उसका शरीर पीछे से और भी फैला हुआ लगता था। बच्चे एक-दूसरे से आगे होते हुए टिकट-घर के नज़दीक जाने लगे। मिस पाल टिकट-घर की खिड़की पर झुकी हुई थी। एक लड़के ने धीरे से आवाज़ लगाई, "कमाल है भई कमाल है!"

इसपर आसपास खड़े बहुत-से बच्चे हंस दिए। मुझे लगा जैसे किसी-ने मेरे भारी मन पर एक और बड़ा पत्थर डाल दिया हो। बच्चे सब-के सब टिकट-घर के आसपास जमा हो गए थे और आपस में खुसर-पुसर कर रहे थे। मैं उनसे कुछ कह भी नहीं सकता था, क्योंकि उससे मिस पाल का ध्यान खामखाह उनकी तरफ चला जाता। मै उधर से अपना ध्यान हटाकर दरिया की तरफ से आते हुए लोगों को देखने लगा। फिर भी बच्चों की खुसर-पुसर मेरे कानों में पड़ती रही। दो लड़कियां बहुत धीरे-धीरे आपस में बात कर रही थीं, "मर्द है।"

"नहीं, औरत है।"

"तू सिर के बाल देख, बाकी शरीर देख। मर्द है।"

"तू कपड़े देख, और सब कुछ देख। औरत है।"

"आओ, बच्चो आओ, पास आकर देखो," मिस पाल की आवाज़ से मैं जैसे चौंक गया। मिस पाल टिकट लेकर खिड़की से हट आई थी। बच्चे उसे आते देखकर 'आ गई, आ गई' कहते हुए भाग खड़े हुए। एक बच्चे ने सड़क के उस तरफ जाकर फिर ज़ोर से आवाज़ लगाई, "कमाल है भई कमाल है!"

मिस पाल सड़क पर आकर कई कदम बच्चों के पीछे चली गई।

"आओ बच्चो, यहां हमारे पास आओ," वह कहती रही। "हम

तुम्हें मारेंगे नहीं, टॉफियां देंगे। आओ…"

मगर बच्चे पास आने की बजाय और भी दूर भाग गए। मिस पाल कुछ देर सड़क के बीच रुकी रही, फिर लौटकर मेरे पास आ गई। उस समय उसके चेहरे का भाव बहुत विचित्र लग रहा था। उसकी आंखों में आए हुए आंसू नीचे गिरने को हो रहे थे और वह उन्हें झुठलाने के लिए एक फीकी हसी हंसने का प्रयत्न कर रही थी। उसने अपने ओठों को जाने किस तरह काटा था कि एकाध जगह से उसकी लिपस्टिक नीचे फैल गई थी। उसकी घिसी हुई कमीज़ की सीवनें कंधे के पास से खुल रही थीं।

"खूबसूरत बच्चे थे; नहीं ?" उसने आंखें झपकते हुए कहा।

मैंने उसकी बात का समर्थन करने के लिए सिर हिलाया तो मुझे लगा कि मेरा सिर पत्थर की तरह भारी हो गया है। उसके बाद मेरी समझ में कुछ नहीं आया कि मिस पाल मुझसे क्या कह रही है और मैं उससे क्या बात कर रहा हूं; जैसे आंखों और शब्दों के साथ विचारों का कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा था। मुझे इतना याद है कि मैंने मिस पाल को टिकट के पैसे देने का प्रयत्न किया, मगर वह पीछे हट गई और मेरे बहुत अनुरोध करने पर भी उसने पैसे नहीं लिए। मगर किस अव-चेतन प्रक्रिया से हम लोगों के बीच अन्त तक बातचीत का सूत्र बना रहा, यह मैं नहीं जान सका। मेरे कान उसे बोलते सुन रहे थे और अपने को भी। परन्तु वे जैसे दूर की ध्वनियां थीं—अस्फुट, अस्पष्ट और अर्थ-हीन। जो बात मैं ठीक से सुन सका, वह यही थी, "और वहां जाकर रणजीत, दफ्तर में मेरे बारे में किसीसे बात मत करना। समझे ? तुम्हें पता ही है कि वे लोग कितने ओछे हैं। बल्कि अच्छा होगा कि तुम किसी-को यह भी न बताओ कि तुम मुझे यहां मिले थे। मैं नहीं चाहती कि वहां कोई भी मेरे बारे में कुछ जाने या बात करे। समझे।"

बस तब स्टार्ट हो रही थी और मैं खिड़की से झांककर को देख रहा था। बस चली तो मिस पाल हाथ हिलाने लगी। दोनों खाली डिब्बे वह अपने हाथों में लिए हुए थी। मैंने भी एक बार उसकी तरफ हाथ हिलाया और बस के मुड़ने तक हिलते हुए खाली डिब्बों को ही देखता रहा।

आदमी और दीवार

"'और सत्ते की आंखें छत, फर्श और खिड़कियों से घूमती हुई फिर उस दीवार पर आकर अटक गई।

उस लकड़ी की दीवार का एक अपना ही व्यक्तित्व था। जगह-जगह उसपर कीलों और चाकुओं से तरह-तरह की लिपियां खोदी गई थीं। शब्दों की आकृतियां कुछ ऐसी थीं कि कहीं तो लगता था कि दीवार मुस्करा रही है और कहीं लगता था कि मुंह बिचका रही है। पिछले कई वर्षों में जो-जो किरायेदार उस घर में आकर रहे थे, उनमें से कई एक अपने अस्तित्व का लेखा-जोखा उस दीवार पर छोड़ गए थे। दीवार के एक कोने में गहरे फारसी अक्षरों में खुदाई की गई थी—"शीरीं मुमताज़ उर्फ मुमताज़ महल" उसके सामने के कोने में—जैसे साम्प्रदायिक हिंसाब-किताब बराबर रखने के लिए—किसीने बहुत बाद में देवनागरी अक्षरों में अपना नाम खोद दिया था—"दम्मो अर्थात् दमयन्ती"। दीवार के बीचोंबीच किसीने डेढ़ फुट रकबा घेरकर अपना नाम लिखा था—"बिल्लू।" उसके नीचे बाद में किसी और ने तिरछे अक्षरों में जोड़ दिया था—"उर्फ ब्लू ब्लैक।" एक जगह पहले जैसे फारसी अक्षरों में लिखा था—"मैं अपनी रूह यहीं छोड़े जा रही हूं—शीरीं मुमताज़,

१३-८-४७।" उसके डेढ़ महीना बाद ३०-९-४७ को किसीने उसके नीचे अपनी स्वीकृति लिख दी थी—"बहुत-बहुत मेहरबानी, शुक्रिया।" दीवार के उस भाग में, जो दरवाज़े के चौखट से जा मिला था, किसीने बहुत जल्दी में, जैसे चलते-चलते लिखा था—"मुझे तुमसे मुहब्बत है।" उसके नीचे टिप्पणी की गई थी—"मेरी जान, आप नर हैं या मादा ?"

इनके अलावा और भी कई तरह की लिपियां थीं—कुछ अस्पष्ट और उलझे हुए नाम, कुछ आड़ी-तिरछी लकीरें और कुछ अनिश्चित-सी आकृतियां, जिनके तरह-तरह के अर्थ निकल सकते थे। जाने कब-कब किस-किसने किस-किस उद्देश्य से वे आकृतियां बनाई थीं। एक गोल चेहरा था जो चेहरा न होकर किसी जानवर का पेट भी हो सकता था। एक ऊद-बिलाव की आंख थी जो सारी दीवार पर अपनी मनहूस छाया डाले थी और एक गहरा ज़ख्म था, जो दीवार को छीलने के असफल प्रयास में वहां बन गया था'''।

सत्ते को न जाने क्यों उस दीवार से चिढ़ हो रही थी। उसकी आंखें जब-जब उन शब्दों और आकृतियों पर पड़ती थीं, एक अव्यक्त-सी झुरझुरी उसके शरीर में भर जाती थी। दीवार की एक-एक लकीर में उसे कुछ रहस्य दिखाई देने लगता था और उसका मन होता था कि किसी तरह वे सब लिपियां मिट जाएं और वह दीवार फिर से कोरी हो जाए। कम से कम उस मनहूस आंख को तो वह ज़रूर वहां से मिटा देना चाहता था जो उसे लगातार अपनी ही तरफ घूरती हुई लगती थी। जाने किसकी आंख थी वह, और क्यों वहां बनाई गई थी !

उस आंख को सामने से हटाने के लिए ही वह चारपाई से उठकर खिड़की के पास चला गया। नीचे गली में कोई हलचल नहीं थी—जो बच्चे दिन-भर वहां खेला करते थे और जिनकी वजह से अक्सर वह परेशान हो उठता था, वे भी उस समय वहां नहीं थे। सामने घर की

टूटी हुई नाली का पानी ही आवाज़ के साथ गली में गिर रहा था जिससे गली बिलकुल निर्जीव नहीं लगती थी। पास ही कूड़े का ढेर था जो एक चिमगादड़ की तरह अपनी जगह से चिमटा हुआ था।

ज़ीने पर पैरों की आहट और प्याली में चम्मच हिलाने की आवाज़ ने उसका ध्यान गली से हटा दिया, मगर वह खिड़की के पास से नहीं हटा। वह यह नहीं जतलाना चाहता था कि उसने वह आवाज़ सुनी है, या उसे किसीके कमरे में आने का पता है। उसे उस आवाज़ में एक चुनौती, एक अवज्ञा-सी महसूस हो रही थी—जैसे कि वह आवाज़ केवल उसे दुखाना और हीन करना चाहती हो। कुछ क्षण वह आवाज़ थोड़े फ़ासले पर रुकी रही, फिर उसके कानों के बहुत पास आ गई।

"चाय ले लीजिए"" ।"

उसने घूमकर देखा कि राजो चाय की प्याली लिए सिर झुकाए खड़ी है, उसकी आंखें रो-रोकर सूज गई हैं और उसके चेहरे पर स्याह झाइयां-सी पड़ गई हैं। वह जैसे बहुत कठिनाई से अपनी आवाज़ को संभाले हुए थी। सत्ते पल-भर उसे देखता रहा और फिर चुपचाप जाकर चारपाई पर बैठ गया।

"चाय ले लीजिए" राजो ने उसके पास जाकर फिर कहा।

"तुझसे किसने चाय लाने को कहा है ?" सत्ते को खुद लगा कि उसकी आवाज़ ज़रूरत से ज़्यादा तीखी है।

"बी जी ने कहा था कि आपकी चाय का वक्त हो गया है""" ।"

"वक्त हो गया है, तो वे आप आकर चाय नहीं दे सकती थीं ?"

"उन्होंने मुझसे कहा था कि मैं दे दूं", कहते हुए राजो ने चाय की प्याली खिड़की के पास के आले में रख दी और चुपचाप नीचे को चल दी।

"सुन !" वह दहलीज़ लांघने लगी, तो सत्ते लगभग चिल्लाकर

बोला। राजो रुक गई और बिना कुछ कहे आंखें झुकाए वहीं खड़ी रही।

"तेरा रोना अभी बन्द होगा कि नहीं ?"

राजो की आंखों में पल-भर के लिए एक चमक आ गई और उसकी गरदन तन गई।

"मैं रो कहां रही हूं ?" उसने कहा।

"रो नहीं रही, तो मैं क्या यूं ही बक रहा हूं ? मुझे तेरी आंखें नज़र नहीं आतीं ?"

राजो की आंखों की चमक थोड़ी बढ़ गई और उसने अपना होंठ काट लिया।

"बोलती क्यों नहीं ?" सत्ते फिर गरजा। "किसीकी बात का तुझ-पर कुछ असर भी होता है ?"

राजो की आंखें उसके चेहरे से हट गईं और वह दहलीज लांघकर सहसा नीचे को चल दी।

"सुन !" सत्ते गुस्से के मारे चारपाई से उठ खड़ा हुआ। "मैं यह चाय नहीं पिऊंगा।"

राजो बिना कुछ कहे ज़ीने से नीचे उतर गई।

"मैं कह रहा हूं यह प्याली यहां से उठाकर ले जा।" सत्ते मारे गुस्से के बेहाल-सा होकर बोला। मगर राजो तब तक नीचे पहुंच चुकी थी। वह भन्नाता हुआ आले के पास पहुंचा। प्याली उठाकर कुछ पल हतप्रभ-सा चाय को देखता रहा, फिर एक झटके से चाय उसने नीचे गली में फेंक दी। मन हुआ कि प्याली को भी साथ ही पटक दे, मगर प्याली की कीमत का ध्यान आ जाने से उसने हाथ को रोक लिया। फिर ज़ीने के पास जाकर उसने ज़ोर से कहा, "किसीको मेरे पास ऊपर आने की ज़रूरत नहीं। मुझे आज चाय या खाना कुछ भी नहीं चाहिए। खामखाह सब लोग दिन-भर मुझे परेशान करते रहते हैं...!"

कमरे में आकर उसने ज़ोर से दरवाज़ा बन्द कर लिया। चारपाई पर बैठते ही दीवार की लिपियां फिर उसके सामने आ गईं—"मैं अपनी रूह यहीं छोड़े जा रही हूं—शीरीं मुमताज, १३-८-४७।" "मेरी जान, आप नर हैं या मादा ?" बी, आई, एल्, एल् यू, और वह ऊद-बिलाव की आंख।

वह दीवार जाने कितने साल पुरानी थी। कई जगह उसकी लकड़ी को घुन लग गया था। जब वह मकान बना था, जाने वह दीवार तब साथ ही बनी थी, या बाद में किसी किरायेदार ने अपनी सुविधा के लिए लकड़ी का पार्टीशन डलवाकर उस बड़े कमरे को दो हिस्सों में बांट लिया था। तख़्तों के बीच की दरारों से साथ के हिस्से की रोशनी नज़र आती थी। वह हिस्सा अब घर का फालतू सामान रखने के काम आता था। जाने क्या-क्या चीज़ें वहां जमा थीं ! खाली बोतलें, पुराने पीपे, फटे हुए बोरे, टूटी हुई कुरसियां, और कई तरह की टोकरियां, दरांतियां, कठौते और टीन का एक हमाम जो बरसों से पानी गरम करने के काम नहीं आया था। वह हिस्सा जैसे एक छोटा-सा कब्रिस्तान था जहां कितनी ही चीज़ें अपने पुराने इतिहास को अपने में समेटे न जाने कितने अरसे से दफन थीं। और इस हिस्से को उस हिस्से से अलग करती थी लकड़ी की वह दीवार…!

"दम्मो अर्थात् दमयन्ती…!"

यह दम्मो कौन थी ? उसने अपना नाम दीवार पर क्यों लिखा था ? वह उस घर में किन दिनों रहती थी ? उसकी शक्ल-सूरत कैसी थी ? उम्र कितनी थी ? अब वह कहां होगी ? आज अगर आकर वह इस दीवार पर अपना नाम लिखा हुआ देखे, तो क्या उसे खुशी होगी ? या उसके मुंह से उदासी की एक लंबी सांस निकल पड़ेगी ?… और यह बिल्लू, यह उस घर में कब रहता था ? उसे अपना नाम लिखने के लिए

डेढ़ फुट रकबे की ज़रूरत क्यों पड़ी थी ? क्या वह इससे अपने शरीर के लम्बे-चौड़े डीलडौल को व्यक्त करना चाहता था, या अपने ठिगनेपन को छिपाना चाहता था ? और जिसने उसके नाम का अर्थ ब्लू ब्लैक कर दिया था, उसे उस बिल्लू से क्या चिढ़ थी ?···और शीरीं मुमताज़ ? उसके सम्बन्ध में इतना तो निश्चित था कि वह विभाजन से पहले उस घर में थी—विभाजन से दो दिन पहले तक थी। क्या वह घर उसने १३-८-४७ को ही छोड़ा था ? कैसे छोड़ा था ? और उसने यह क्यों लिखा था कि वह अपनी रूह यहीं छोड़े जा रही है ? 'जाने' से उसका क्या अभिप्राय था ? उस घर से, उस शहर से जाना या····? 'शीरीं मुमताज़ उर्फ मुमताज़ महल !' वह लड़की अपने को मुमताज़ महल क्यों समझती थी ? क्या उसके जीवन में भी कोई ऐसा व्यक्ति था जिससे उसे आशा थी कि वह उसके बाद उसके लिए एक ताज महल बनवाएगा या वह दीवार ही उसका ताजमहल थी ?

सत्ते ने ओठों को गीला किया और अपने घुंघराले बालों में हाथ फेर लिया। उसे लग रहा था कि कोई बहुत बड़ी बात उसके मन में घुमड़ रही है, जिसे यदि वह बाहर व्यक्त कर सके, तो वह एक महान रचना का रूप ले सकती है। कितनी ही बार ऐसी बातें उसके मन में आती थीं, जिनसे वह सहसा चमत्कृत हो उठता था, परन्तु जिन्हें बाहर व्यक्त करने का उसे अवसर ही नहीं मिलता था। यदि वह अपने मन की सब बातें लिख सकता, तो आज कितना बड़ा लेखक होता ! दुनिया में उसकी कितनी कद्र होती ! लोगों के उसके नाम कितने-कितने पत्र आते ! वह जिधर से जाता, लोगों की आंखें उसकी तरफ उठ जातीं और लोग पास आकर उसके हस्ताक्षर मांगते ! मगर जाने क्या बात थी कि जब वह लिखना चाहता था, तो उसके मन की बात काग़ज़ पर उतरती ही नहीं थी। हर बात जो मन में उमड़ती हुई बहुत बड़ी और

महत्त्वपूर्ण लगती थी, कागज़ पर लिख देने से बहुत फीकी-सी हो जाती थी। कम से कम हरीश उसकी लिखी हुई चीज़ों को पढ़कर ऐसा ही भाव दिखलाता था जैसे उनमें कुछ भी सार न हो! कभी-कभी उसे लगता था कि हरीश केवल ईर्ष्या के कारण ही ऐसा करता है, उसकी व्यंग्यपूर्ण मुस्कराहट उसकी अपनी हीनता को ही प्रमाणित करती है! अन्यथा कभी तो हरीश ने उसकी किसी चीज़ की प्रशंसा की होती! एक तरफ वह था जो किसी ज़माने में हरीश की लिखी हुई रद्दी से रद्दी चीज़ को पढ़कर भी उसकी प्रशंसा किए बिना नहीं रहता था, और दूसरी तरफ था वह आदमी—हरीश—जिसके पास उसके लिए सिवाय एक व्यंग्यपूर्ण मुस्कराहट के कुछ नहीं था। क्या इसका कारण इतना ही नहीं था कि उस आदमी को अपनी सतही सफलता का बहुत गुमान था? उसकी सफलता सतही सफलता ही तो थी! उसकी रचनाओं में गहराई कहां थी? उस बार एक समीक्षक ने किस बुरी तरह उसकी खबर ली थी? बखिए उधेड़कर रख दिए थे! बाद में लोगों से मिल-मिलाकर किसी तरह अपनी प्रशंसा लिखवा ली, तो फिर दिमाग आसमान पर चढ़ गया! आज वह स्वयं इस आदमी की रचनाओं की समीक्षा लिखे, तो एक-एक को रूई की तरह धुनकर रख दे! मगर लिखने की तो अब आदत ही छूटती जा रही है। दरअसल दिमाग काम की वजह से इतना थका रहता है कि लिखना-लिखाना उससे नहीं हो पाता। पहले घर में शब्दकोश लेकर अंग्रेज़ी की कविताओं से माथापच्ची करो, फिर जाकर तीन घंटे कॉलेज में उनके अर्थ लड़कों को बताओ। अगर साथ में रोटी कमाने की फिक्र न होती, और इतनी थकान न रहा करती, तो वह आज एक प्रतिष्ठित लेखक न माना जाता? यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं में वह सदा सर्वप्रथम नहीं रहा था? वह कितनी व्यवस्था से अपना काम किया करता था जबकि हरीश उन दिनों ठीक से काम न करने की

वजह से अध्यापकों के ताने ही सुना करता था। अब हरीश आवारा क़िस्म की ज़िंदगी बिताता है, नौकरी-औकरी नहीं करता, इसलिए लोग भी सोचने लगे हैं कि उसमें शायद कुछ विशेषता होगी ही। इस देश में लिखने वाले लोग हैं ही कितने! जो चार पंक्तियां लिख लेता है, वही अपने को लेखक समझने लगता है। और देशों में इस तरह के लोगों की बात भी नहीं पूछी जाती!

उसने उठकर अलमारी खोली और सिगरेटों का डिब्बा निकाल लिया। वे 'थ्री कासल्ज' के सिगरेट उसने खास-खास मौकों पर पीने के लिए रखे थे। जब कभी मन बहुत परेशान होता था, तो वह उस डिब्बे को निकाल लिया करता था। उसने एक सिगरेट निकालकर ढीले-ढाले ढंग से मुंह में लगाया और जली हुई माचिस को क्षण-भर देखते रहने के बाद उसे सुलगा लिया। मुंह से धुआं निकला, तो उसे लगा कि उसकी लचक में एक विशेषता है, जो वही पैदा कर सकता है। यह लचक उसके अन्दर की कलात्मकता का प्रमाण है। यदि इस कलात्मकता को सही मार्ग देने के लिए वह समुचित प्रयत्न भी कर पाता ....!

"बी, आई, एल, एल, यू, बिल्लू—उर्फ ब्लू ब्लैक!"

सत्ते का चेहरा हंसी से फैल गया। उसे लगा कि उसे हरीश का वर्णन करना हो, तो वह कुछ ऐसे ही ढंग से करेगा। बिल्लू उर्फ ब्लू ब्लैक! उसने कठिनाई से अपनी हंसी को गले में रोके रखा। वह नहीं चाहता था कि हंसी की आवाज़ नीचे सुनाई दे, जिससे घर के लोग सोचें कि उसका गुस्सा उतर गया है। गुस्से की बात सोचने पर उसकी हंसी सचमुच गायब हो गई और उसके माथे पर लकीरें पड़ गईं, उसी आदमी की वजह से तो आज उसके घर में यह स्थिति पैदा हुई थी! कितना अच्छा होता जो कभी उसकी उस आदमी से दोस्ती न हुई होती और न ही वह उसे अपने घर में लाया होता!

आज उस आदमी की वजह से ही तो उसने राजो को पीट दिया था। आज दिन चढ़ा ही ऐसा मनहूस था कि सुबह से ही उसका सिर भन्नाया हुआ था। नींद खुलने पर उसे जो चाय मिली वह इतनी कड़वी थी कि मुंह के साथ-साथ दिमाग का ज़ायका भी बिगड़ गया। ज़ीने से नीचे जाते हुए एक पैड़ी से पांव फिसल गया, जिससे दाईं कुहनी में चोट आ गई। उस पैड़ी की मरम्मत के लिए वह कई दिनों से घर में सबसे चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था। उसके बाद नहाकर कंघी करते हुए सहसा उसकी नज़र उस पिटारी पर पड़ गई जिसमें कुछ चिट्ठियां एक रेशमी रूमाल में लपेटकर रखी हुई थीं। राजो के ट्रंक के बाहर वह पिटारी खुली हुई पड़ी थी—शायद उसे खोलने के बाद राजो को किसी काम से बाहर बुला लिया गया था और वह उसे वापस ट्रंक में रखना भूल गई थी। चिट्ठियों को देखने की ज़्यादा उत्सुकता उसे इसलिए हो आई थी कि उन अक्षरों की बनावट को वह अच्छी तरह पहचानता था। एक वक्त था जब हर दूसरे-तीसरे दिन उसे हरीश की चिट्ठी आया करती थी। वह उसकी हर चिट्ठी बहुत चाव के साथ घर के सब लोगों को पढ़कर सुनाता था। उन दिनों हरीश की उससे नई-नई मित्रता हुई थी और वह घर में उस आदमी की बहुत प्रशंसा किया करता था। यह शायद इसीका फल था कि आज उसे अपनी बहन को—उसी बहन को जिसे कभी न जाने कितने लाड़-प्यार से वह अपने कंधों पर उठाए घूमा करता था—इस बुरी तरह पीट देना पड़ा था। राजो से उसने यह आशा नहीं की थी कि वह उसके सामने इस तरह धृष्टता करेगी···!

खुली हुई पिटारी के पास खड़ा होकर वह पल-भर स्तब्ध भाव से उन अक्षरों को देखता रहा था—यहां तक कि पल-भर के लिए उसे लगा था कि उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा रहा है। न जाने क्या-क्या अकल्पित विचार एकसाथ उसके मस्तिष्क में कौंध गए थे। वह

व्यक्ति कब से राजो के नाम चिट्ठियां लिख रहा था ? राजो क्यों उन्हें इस तरह संभालकर रखे हुए थी ? क्या उन दोनों के बीच किसी तरह की घनिष्ठता स्थापित हो चुकी थी ? कुछ अरसा पहले एक बार हरीश उसकी अनुपस्थिति में उस घर में आया और दो-एक दिन वहां रहा भी था ! उन दिनों उस आदमी ने उसकी अनुपस्थिति का कोई अनुचित लाभ तो नहीं उठाया ? यह क्या उसका अपना ही दोष नहीं था कि उसने ऐसा मौका आने दिया जबकि वह जानता था कि घर में राजो के पास बूढ़े मां-बाप के सिवा कोई नहीं है और वे दोनों लड़की को लाड़-लड़ाने किसी भी हद तक जा सकते हैं···!

उसने पिटारी उठा ली और उसे लिए हुए चुपचाप ऊपर अपने कमरे में चला आया। अधिकांश चिट्ठियां वही थीं जो हरीश ने पिछले कुछ वर्षों में स्वयं उसीके नाम लिखी थीं और जो उसने घर में पढ़कर सुनाई थीं। उनके अतिरिक्त दो-एक चिट्ठियां ऐसी भी थीं जो उसके पिता के नाम आई थीं और उनमें से एक में हरीश ने अपने आने के दिन की सूचना दे रखी थी और दूसरी में उनके आतिथ्य के लिए उन्हें धन्यवाद दिया था। हां, एक चिट्ठी थी—और वह चिट्ठी राजो के नाम ही लिखी गई था—जिसके अन्त में 'और' के बाद तीन बिन्दु थे—कोई बात थी जो बिना लिखे उन बिन्दुओं द्वारा व्यक्त की गई थी। दूसरे पत्रों को देखते हुए उसके मन में एक खीझ और झुंझलाहट भर रही थी। परन्तु उन बिन्दुओं ने सन्देह का एक वास्तविक सूत्र देकर उस खीझ को एक गम्भीर भाव में बदल दिया था। वह देर तक उस पत्र को उलट-पलटकर देखता रहा था और उन बिन्दुओं के तरह-तरह के अर्थों की कल्पना करता रहा था···

कुछ देर के बाद वह पिटारी हाथ में लिए हुए फिर नीचे चला गया और बाहर के कमरे में पहुंचकर उसने पिटारी वहां मेज़ पर रख दी।

बी जी और बाबूजी उस समय वहीं थे। उसने गम्भीर भाव से उन दोनों को देखते हुए राजो को भी वहां बुला लिया। राजो रसोईघर में आटा गूंध रही थी। गीले हाथों को दोपट्टे से पोंछती हुई वह आकर पास खड़ी हो गई।

"इस पिटारी में किसकी चिट्ठियां हैं?" उसने कई क्षण राजो की ओर ताकते रहने के बाद गम्भीर स्वर में पूछा।

राजो ने एक बार पिटारी की तरफ देखा और फिर हक्की-बक्की-सी उसका मुंह देखने लगी।

"मैं पूछता हूं किसकी चिट्ठियां हैं?"

बी जी उठकर पिटारी के पास आ गई। बाबूजी अपनी कुरसी पर ही बैठे रहे—परन्तु उनकी आंखें किसी अज्ञात आशंका से फैल गईं।

"किसकी चिट्ठियां हैं, बताती क्यों नहीं?" बी जी ने राजो की बांह को थोड़ा झिंझोड़ दिया।

"आपके सामने पड़ी हैं, देख लीजिए किसकी चिट्ठियां हैं," राजो सहसा तीखे स्वर में बोली।

"तू नहीं बता सकती?" वह चिल्लाया। गुस्से से उसके माथे की नसें फड़क रही थीं।

"आपको पता तो है किसकी चिट्ठियां हैं। आप ही के नाम आई हुई चिट्ठियां हैं। मैंने संभालकर रख दी थीं कि शायद कभी आपको ज़रूरत पड़ जाए।"

"मेरे नाम और लोगों की भी तो चिट्ठियां आती हैं। उन सबको तू संभालकर क्यों नहीं रखती? यह एक ही आदमी ऐसा क्यों है जिसकी चिट्ठियां तुझे खास लगती हैं और जिन्हें संभालकर रखने की ज़रूरत महसूस होती है?

"मैं सोचती थी कि ये एक लेखक की चिट्ठियां हैं, और वह आपका

दोस्त भी है, इसलिए···।"

"वह लेखक है या क्या है, वह मैं सब जानता हूं, और यह भी जानता हूं कि ये चिट्ठियां तू संभालकर क्यों रखती है। मैं नहीं जानता था कि हमारे घर में भी इस तरह की बात कभी हो सकती है। मुझे पता होता कि तुझे ऐसे गुल खिलाने हैं, तो मैं कभी तुझे यहां इन लोगों के पास अकेली न छोड़ता। आप सुन रहे हैं बाबूजी, यह लड़की क्या कह रही है?"

बाबूजी ने धीरे से सिर हिलाया। उनकी आंखों में घना कोहरा-सा घिर आया था। बी जी माथे पर हाथ रखे हुए फरश पर बैठ गई थीं।

"मैं जानना चाहता हूं कि तेरे नाम आई हुई चिट्ठी में इन बिन्दुओं का क्या मतलब है?" वह उस चिट्ठी को अलग निकालकर उसे हाथ में झटकता हुआ बोला। राजो का चेहरा सख्त हो गया और उसकी आंखों में आंसू भर आए। लगा कि अभी वह झपटकर चिट्ठी उसके हाथ से छीन लेगी। "मैं नहीं जानती इनका क्या मतलब है", वह बोली।

"तू नहीं जानती!" वह एकदम गरज उठा। "मैं अभी इनका मतलब तुझे बताता हूं। पहले मैं इस पुलिंदे को आग में झोंक दूं, फिर आकर बताऊंगा कि इनका क्या मतलब है···।"

वह चिट्ठियों का पुलिंदा लेकर कमरे से जाने लगा, तो राजो ने सहसा वह उसके हाथ से झपट लिया।

"मैंने ये चिट्ठियां इतने दिनों से संभालकर रख रखी हैं, मैं किसीको इन्हें जलाने नहीं दूंगी", वह बोली।

"तू नहीं जलाने देगी।" कहता हुआ वह पागल की तरह राजो पर झपट पड़ा और उसके हाथ से पुलिंदे को छीनने की कोशिश करने लगा। राजो चिट्ठियों को छाती से चिमटाए गठरी-सी बनकर जमीन पर बैठ गई।

"मैं कहता हूं ये चिट्ठियां मुझे दे दे, नहीं तो मैं आज तेरी खाल उधेड़ दूंगा।"

राजो उसी तरह पत्थर की मूर्ति बनी चिट्ठियों को अपने साथ चिमटाए रही। चिट्ठियां छीनने के प्रयत्न में हारकर उसने लगातार तीन-चार चपत राजो की पीठ पर जमा दीं।

"तू चिट्ठियां देगी कि नहीं?"

"नहीं।"

"दे दे, खसम खानी!" बी जी डर और गुस्से से कांपती हुई आवाज़ में कुछ विनय के साथ बोलीं, "भाई मांग रहा है, तो तू चिट्ठियां उसे दे क्यों नहीं देती? उसीके दोस्त की चिट्ठियां हैं—वह उन्हें चाहे रखे चाहे जला दे। तुझे इनका क्या करना है?"

"मुझे पता है इसे क्या करना है", वह हांफता हुआ बोला। "मैं अभी इसकी बोटी-बोटी चीरकर रख दूंगा।" इसपर भी राजो की पकड़ ढीली नहीं हुई तो उसने उसकी पीठ पर दो-एक लातें भी जमा दीं। राजो जैसे पत्थर बनकर बैठी थी, बैठी रही। परन्तु फिर जाने क्या हुआ कि अचानक ही उसका शरीर ढीला पड़ गया, उसने चिट्ठियों का पुलिंदा निकालकर फरश पर रख दिया और सबपर एक वितृष्णा की नज़र डालकर वहां से चली गई।

"बेटा, जवान लड़की पर इस तरह हाथ नहीं उठाते," राजो के चले जाने पर बी जी ने कहा।

"अभी तो मैंने इससे कुछ कहा ही नहीं," वह उसी तरह हांफता हुआ बोला। "मेरी बहन इस तरह की हरकत करेगी, तो मैं सचमुच उसे चीरकर रख दूंगा।"

"ऐसे ही ज़िद करती हैं बेटा, और कोई बात नहीं। इसे इन चिट्ठियों का क्या करना है? तू इन्हें आग में जला या जो जी चाहे कर!"

बीजी कहती रहीं।

"अभी नासमझ बच्ची है; इसे भले-बुरे की समझ नहीं है।" बाबूजी का सिर ज़रा-सा हिला और आंखें दो-एक बार झपक गईं।

"बीस की हो चुकी है और अभी इसे समझ नहीं है" वह झल्लाकर बोला। "आप लोगों के इसी लाड़ ने ही इसका दिमाग खराब कर रखा है। बड़ा लेखक है वह—रवीन्द्रनाथ ठाकुर है—जिसकी इसने चिट्ठियां रख रखी हैं। आप लोगों का तो कुछ नहीं, मगर मुझे तो चार आदमी जानते हैं। मुझे तो अपनी बदनामी का खयाल है।"

उसने उन सब चिट्ठियों को लेकर पुर्ज़ा-पुर्ज़ा कर दिया। फिर रसोई-घर में जाकर उन्हें चूल्हे में डाल दिया। राजो बांहों में सिर डाले चूल्हे के पास बैठी थी। वह उसी तरह बैठी रही और हिचकियां लेकर रोती रही।

"अब जाकर इनकी राख को पिटारी में भर ले।" जब आखिरी पुर्ज़ा भी जलकर गोल हो गया, तो वहां से चलते हुए उसने राजो से कहा और लकड़ी के ज़ीने पर धम्-धम् पैरों की आवाज़ करता हुआ ऊपर अपने कमरे में आ गया। राजो से बात करते हुए उसका मुंह न जाने क्यों कड़वा और लसीला हो गया था। वह आकर कटा-सा चारपाई पर गिर गया।

अब उस बात को चार घण्टे होने को आए थे।

"मेरी जान आप नर हैं या मादा ?" दीवार पर खुदे हुए अक्षर मुंह चिढ़ा रहे थे। धूप ढलने के साथ-साथ कमरे के वातावरण में हल्की ठंडक भर गई थी। गली से बच्चों के हंसने-रोने, खेलने और लड़ने की मिली-जुली आवाज़ें आ रही थीं, मगर कमरे के अन्दर एक तरह से सन्नाटा ही था। वह सन्नाटा कमरे में ही नहीं, सारे घर में छाया हुआ लगता था। नी   नल के पास से सिरफ कपड़े धोने की आवाज़ आ रही थी।

राजो उस समय से अबतक लगातार काम कर रही थी। सत्ते ने कितना ही चाहा था कि जाकर एक बार उसके सिर पर हाथ फेर दे और उसे थोड़ा पुचकार दे, मगर बात सोचते-सोचते उसका क्रोध फिर लौट आता था। राजो की आंखों में जो अवज्ञा, उपेक्षा और वितृष्णा उसने देखी थी उसकी कल्पना से ही उसके मन में चिनगारियां-सी फूटने लगती थीं। कमरे का वातावरण ठंडा हो रहा था, मगर उसके अंदर रह-रहकर एक तपती हुई लहर उठ आती थी। हरीश के पत्र के उन रहस्यमय बिन्दुओं की याद हो आने से उसके माथे की नसें फिर फड़कने लगी थीं।

वह चारपाई से उठकर काफी देर कमरे में टहलता रहा। फिर खिड़की के पास जाकर गली के उदास उजाले को सांझ के गहरे रंग में घुलते देखने लगा। उसे न जाने क्यों कुछ बरस पहले की ऐसी ही उदास सांझें याद आने लगीं जब वह कितनी-कितनी देर इसी तरह खिड़की के पास खड़ा रहता था। इस समय गली में खेलते हुए सब बच्चों के चेहरे उसके लिए अपरिचित थे। हर साल गर्मी की छुट्टियों में महीना-बीस-दिन के लिए वहां आने पर वह काफी हद तक अपने को उस घर में अजनबी-सा महसूस करता था। हर साल गली में कुछ-न-कुछ बदल चुका होता था। उन दिनों उनके सामने का घर इतना ऊंचा नहीं था जितना अब था। तब तक उसकी डेढ़ मंजिल ही बनी थी। उस घर की छत इस खिड़की के सामने पड़ती थी। तब उस छत पर और नीचे गली में खेलनेवाले सब बच्चों के चेहरे उसके पहचाने हुए थे। कभी-कभी उसे खिड़की से झांकते देखकर उस छत से बच्चे उसकी तरफ मुंह बनाया करते थे। उनके मुंह बनाने पर भी वह इसी तरह खड़ा रहता था। किसी-किसी समय छत पर एक और चेहरा भी दिखाई देता था। उसीकी वह प्रतीक्षा किया करता था। उसका नाम सरोज था—आंखें बड़ी-बड़ी और काली!

बच्चों को उसकी तरफ मुंह बनाते देखकर, वह उन्हें डांट देती थी। कभी-कभी सरोज की आंखें पल-भर के लिए उससे मिल जाती थीं। वह एकदम सकपका जाता था। उसे देखकर सरोज के चेहरे पर न जाने क्यों एक विचित्र कठोर-सा भाव आ जाता था। कभी वह अकेली छत पर बाल सुखा रही होती, तो उसे देखकर सामने से हट जाती थी। वह फिर भी देर-देर तक खिड़की के पास खड़ा रहता था। सरोज के सामने से हट जाने पर भी उसका खुले बालोंवाला चेहरा उसकी आंखों के सामने बना रहता था। वह घंटों रात को बिस्तर पर पड़ा सरोज के बारे में ही सोचता रहता था। दिन में जब घर से निकलता तो एक बार आंखें उठाकर सरोज की छत की तरफ देख लेता था। उसे कितनी इच्छा होती थी कि कभी वह सरोज को पास से देख सके, उसके साथ हंसकर बात कर सके। कितनी बार उसके मन में यह बात आती थी कि किसी तरह सरोज के साथ राजो की मित्रता हो जाए और सरोज उनके घर में आने-जाने लगे। मगर उसकी यह इच्छा इच्छा ही रही थी। सरोज कभी उनके घर में नहीं आई, और न ही कभी वह उससे बात कर सका। वह एम० ए० फाइनल में पढ़ रहा था, तो एक दिन सजधज के साथ सरोज का ब्याह हो गया। एम० ए० कर लेने के बाद जब उसकी बाहर नौकरी लगी, तो उसने सोचा था कि हर साल छुट्टियों में वहां आने पर उस खाली छत को देखकर उसे बहुत विचित्र-सा अनुभव होगा। मगर उसने यह भी सोचा था कि हो सकता है सरोज भी उन्हीं दिनों मैके आया करे और उसे सरोज को छत पर बाल सुखाते देखने का अवसर मिलता रहे। मगर उसके पहली बार आने तक ही वह घर किसी और ने खरीद लिया था और एक नई मंज़िल बनवाकर उस छत को हमेशा के लिए ढक दिया था...।

"यार, तू मर्द का बच्चा होकर इस तरह की बातें करता है?"

हरीश को उसने अपने दिल की बात बताई थी, तो हरीश उससे मज़ाक करने लगा था। "जो एक लड़की को अपनी तरफ आकर्षित नहीं कर सकता, वह ज़िन्दगी में और क्या करेगा ?" हरीश की बात से उसके मन में एक नश्तर-सा चुभ गया था। "और प्यारे ! आदमी की ज़िन्दगी में एक नहीं कई-कई लड़कियां आती हैं। एक बार चूक हो गई सो हो गई, मगर आगे कभी ऐसी चूक न हो....।" सचमुच उस आदमी ने यह कितनी उज़ड्डता की बात कही थी !

गली से आती हुई बच्चों की आवाज़ें सत्ते को अच्छी नहीं लग रही थीं। उस शोर में तो पुराने दिनों की कल्पना करना भी मुश्किल था। सामने घर की नाली से पानी गिर रहा था और राजो के धोए हुए कपड़ों का साबुन-मिला पानी इधर से जाकर उस पानी को अपना रंग दे रहा था।

वह खिड़की के पास से हट आया। अब उसे अपना कमरा बहुत अकेला और उजाड़-सा लगने लगा—जैसे उसके वहां होते हुए भी कमरे में कोई न हो, वह बिलकुल खाली और बिलकुल निर्जन हो। नीचे आंगन से पंखे से चूल्हे में हवा करने की आवाज़ आ रही थी। राजो कपड़े धो चुकी थी और रात की रोटी के लिए चूल्हा सुलगा रही थी। गीली लकड़ियों का धुआं ज़ीने से होकर रोशनदान के रास्ते कमरे में आ रहा था। सत्ते चारपाई पर लेट गया। उसे लग रहा था जैसे नाली में बहते हुए झाग-मिले पानी और रोशनदान के रास्ते कमरे में आते हुए धुएं में उनके आकार के अतिरिक्त भी कुछ हो—ऐसा कुछ जो राजो के अन्दर से उमड़-कर आ रहा था और अब नाली के दागों और ज़ीने की स्याही में बदलता जा रहा था...।

"शीरीं मुमताज़ उर्फ मुमताज़ महल !"

वह फिर एकटक दीवार पर खुदी हुई इबारतों को देखने लगा।

उसे फिर याद आया कि उसने शीरीं मुमताज़ उर्फ़ मुमताज़ महल के विषय में कुछ लिखने की बात सोची थी। क्या बात सोची थी, यह ठीक से याद नहीं आया। मुमताज़ महल की रूह और उस दीवार के सम्बन्ध में कोई बात थी। फिर सोचने लगा कि वह लड़की—शीरीं मुमताज़—देखने में कैसी रही होगी, उस घर में रहकर वह क्या-क्या सोचती रही होगी और वहां से जाते हुए वह दीवार पर यह क्यों लिख गई थी कि वह अपनी रूह यहीं छोड़े जा रही है? काश कि वह उस लड़की को जानता होता, और यह भी जानता कि आज वह कहां है और क्या सोचती है···!

सहसा उसे राजो से सहानुभूति होने लगी। उसका फिर मन हुआ कि एक बार उसे ऊपर बुला ले और उसे पुचकारकर उसके सिर पर हाथ फेर दे। वह उठकर ज़ीने में चला गया। ज़ीने में धुआं इस तरह भर रहा था कि वहां सांस लेना मुश्किल था। वहां आते ही उसे आंखों में जलन महसूस होने लगी। उसने किसी तरह आवाज़ दी, "राजो!"

मगर राजो ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह उसी तरह चूल्हे में पंखा झलती रही। सत्ते ने फिर आवाज़ दी, मगर राजो ने फिर कोई उत्तर नहीं दिया। केवल ज़ीने में आता हुआ धुआं पहले से गाढ़ा हो गया। वह हताश क्रोध के साथ कमरे में लौट आया।

"शीरीं मुमताज़ उर्फ़ मुमताज़ महल!"

सत्ते को यह सोचकर और गुस्सा चढ़ने लगा कि उसके मन में कोई बात है जिसे वह चाहकर भी अपनी थकान और परेशानी के कारण ठीक से व्यक्त नहीं कर [illegible] तक कि खुद भी ठीक से समझ नहीं सकता। उसे कुछ पता नहीं चला कि कब उसने अलमारी से चाकू निकाला और कब दीवार की लिपियों को कुरेदना आरम्भ कर दिया। उसे अपने किए का अहसास तब हुआ जब वह बिल्लू के दोनों एल् सिर

काटकर टी में बदल चुका, शीरीं मुमताज़ पर लम्बी-लम्बी लकीरें खींच-कर उसका हुलिया बिगाड़ चुका और कोने में बनी हुई आंख में सूराख करके उसके सब रेशे झाड़ चुका। उसने यह काम इतनी मेहनत से किया था कि उसके माथे पर पसीना आ गया। मगर जब वह थककर चारपाई पर बैठा, तो कमरे की निर्जीवता पहले से और गहरी हो गई थी। रोशनदान से धुआं आना चाहे बन्द हो गया था, मगर कमरे की सारी हवा धुएं से लदकर भारी हो रही थी। कमर सीधी करने के लिए वह चारपाई पर लेटा, तो उसकी आंखें फिर दीवार से जा टकराईं। शीरीं मुमताज़ का अब वहां पता नहीं था, मगर वह विकृत आंख, पहले से ज़्यादा विकृत होकर उसके बनाए हुए सूराख में से उसे घूर रही थी।

वारिस

घड़ी में तीन बजते ही सीढ़ियों पर लाठी की खट-खट होने लगती और मास्टरजी अपने गेरुआ बाने में ऊपर आते दिखाई देते। खट-खट आवाज़ सुनते ही हम भागकर बैठक में पहुंच जाते और अपनी कापियां और किताबें ठीक करते हुए ड्योढ़ी की तरफ देखने लगते। घड़ी तीन बजा न चुकी होती, तो उनके ऊपर पहुंचते-पहुंचते बजा देती। मैं बहन के कान के पास मुंह ले जाकर कहता, "एक दो तीन...।"

और मास्टरजी बैठक में पहुंच जाते। अगर घड़ी उनके वहां पहुंचने से दो-तीन मिनट पहले तीन बजा चुकी होती, तो वे उसपर शिकायत की एक नज़र डालते, भरकर रखे हुए गिलास में से दो घूंट पानी पीते और पढ़ाने बठ जाते। मगर बैठकर भी दो-एक बार उनकी नज़र ऊपर हमारी दीवार-घड़ी की तरफ उठती, फिर अपने हाथ पर लगी हुई बड़े गोल डायल की पुरानी पीली-सी घड़ी पर पड़ती और वे 'हुं' या 'त्चत्' की आवाज़ से अपना असंतोष प्रकट करते—जाने अपने प्रति, अपनी घड़ी के प्रति या हमारी घड़ी के प्रति।

हमें मैट्रिक की परीक्षा देनी थी और वे हमें अंग्रेज़ी पढ़ाने के लिए आते थे। बहन मुझसे एक साल बड़ी थी, मगर उसने उसी साल ए, बी, सी

से अंग्रेजी सीखी थी। मैं भी अंग्रेज़ी इतनी ही जानता था कि बिना हिचकिचाहट के 'वंडरफुल' के ये हिज्जे बता देता था—डब्ल्यू ए एन, डी ओ आर, एफ यू डबल एल—वंडरफुल। मास्टरजी कविता बहुत उत्साह के साथ पढ़ाते थे। वे टेनीसन, ब्राउनिंग और स्कॉट की पंक्तियों की व्याख्या करते हुए जैसे कहीं और ही पहुंच जाते थे। उनकी आंखें चमकने लगती थीं और दोनों हाथ हिलने लगते थे। भाषा उनके मुंह से ऐसी निकलती थी जैसे खुद कविता कर रहे हों। मुझे कई बार कविता की पंक्ति तो समझ में आ जाती थी, उनकी व्याख्या समझ में नहीं आती। मैं मेज़ के नीचे से बहन के टखनों पर ठोकर मारने लगता। ऊपर से चेहरा गंभीर बनाए रहता। ठोकर मारना इसलिए ज़रूरी था कि अगर मैं उसे ध्यान से पढ़ने देता, तो वह बीच में मास्टरजी से कोई सवाल पूछ लेती थी जिससे ज़ाहिर होता था कि बात उसकी समझ में आ रही है, और इस तरह अपनी हतक होती थी।

कविता पढ़ाकर मास्टरजी हमसे अनुवाद कराते। अनुवाद के 'पैसेज' वे किसी किताब में से नहीं देते थे, ज़बानी लिखाते थे। उनमें कई बड़े-बड़े शब्द होते जो अपनी समझ में ही न आते। वे लिखाते :

"भावना जीवन की हरियाली है। भावना विहीन जीवन एक मरुस्थल है जहां कोई अंकुर नहीं फूटता।"

हम पहले उनसे भावना की अंग्रेज़ी पूछते, फिर अनुवाद करते :

"सेंटीमेंट इज़ लाइफ'स् वेजीटेबल। सेंटीमेंटलेस लाइफ़ इज़ ए डेज़र्ट व्हेयर ग्रास डज नाट ग्रो।"

बहन संशोधन करती कि 'डज नाट ग्रो' नहीं 'डु नाट ग्रो' होना चाहिए, ग्रास 'सिंगुलर' नहीं 'प्लूरल' है। मैं उसके हाथ पर मुक्का मार देता कि कल ए बी सी सीखनेवाली लड़की आज मेरी अंग्रेज़ी दुरुस्त करती है। वह मेरे बाल पकड़ लेती कि एक साल छोटा होकर यह

लड़का बड़ी बहन के हाथ पर मुक्का मारता है ! मगर जब मास्टरजी फैसला कर देते कि 'डू नाट ग्रो' नहीं 'डज़ नाट ग्रो' ठीक है, तो मैं अपने अंग्रेज़ी के ज्ञान पर फूल उठता और बहन का चेहरा लटक जाता हालांकि मारपीट के मामले में डांट मुझीको पड़ती ।

मास्टरजी के आने का समय जितना निश्चित था, जाने का समय उतना ही अनिश्चित था । वे कभी डेढ़ घंटा और कभी दो घंटे पढ़ाते रहते थे । पढ़ते-पढ़ते पांच बजने को आ जाते तो मेरे लिए 'नाउन' और 'एडजेक्टिव' में फर्क करना मुश्किल हो जाता । मैं जम्हाइयां लेता और बार-बार ऊबकर घड़ी की तरफ देखता । मगर मास्टरजी उस समय 'पास्ट पार्टीसिपल' और 'परफेक्ट पार्टीसिपल' जैसी चीज़ों के बारे में जाने क्या-क्या बता रहे होते ! पढ़ाई हो चुकने के बाद वे दस मिनट हमें जीवन के संबंध में शिक्षा दिया करते थे । वे दस मिनट बिताना मुझे सबसे मुश्किल लगता था । वे पानी के छोटे-छोटे घूंट भरते और जोश में आकर सुंदर और असुंदर के विषय में जाने क्या कह रहे होते, और मैं अपनी कापी घुटनों पर रखे हुए उसमें लिखने लगता :

सुंदर मुंदरियो, हो !
तेरा कौन बिचारा, हो !
दुल्ला भट्टीवाला, हो !

बहन का ध्यान भी मेरी कापी पर ही होता क्योंकि वह आंख के इशारे से मुझे यह सब करने से मना करती । कभी वह इशारे से धमकी देती कि मास्टरजी से मेरी शिकायत कर देगी । मैं आंखों ही आंखों से उसकी खुशामद कर लेता । जब मास्टरजी का सबक खत्म होता और उनकी कुर्सी 'च्यां' की आवाज करती हुई पीछे को हटती, तो मेरा दिल खुशी से उछलने लगता । सीढ़ियों पर खट्-खट् की आवाज़ समाप्त होने से पहले ही मैं पतंग और डोर लिए हुए ऊपर कोठे पर पहुंच जाता और

ग्रा बो ऽऽ काटा काटा ऽऽ ई ऽऽ बो ऽऽ !' का नारा लगा देता।

मास्टरजी के बारे में हम ज़्यादा नहीं जानते थे—यहां तक कि उनके नाम का भी हमें नहीं पता था। एक दिन अचानक ही वे पिताजी के पास बैठक में आ पहुंचे थे। उन्होंने कहा था कि एक भी पैसा पास न होने से वे बहुत तंगी में हैं मगर वे किसीसे खैरात नहीं लेना चाहते, काम करके रोटी खाना चाहते हैं। उन्होंने बताया कि उन्होंने कलकत्ता यूनिवर्सिटी से बी० एल्० किया है और बच्चों को बंगला और अंग्रेज़ी पढ़ा सकते हैं। पिताजी हम दोनों की अंग्रेज़ी की योग्यता से पहले ही आतंकित थे, इसलिए उन्होंने उसी समय से उन्हें हमें पढ़ाने के लिए रख लिया। कुछ दिनों बाद वे उन्हें और ट्यूशन दिलाने लगे, तो मास्टरजी ने मना कर दिया। वे हमारे घर से थोड़ी दूर एक गंदी-सी गली में चार रुपये महीने की एक कोठरी लेकर रहने लगे थे। यह वे पूछने पर भी नहीं बताते थे कि बी० एल्० करने के बाद उन्होंने प्रैक्टिस क्यों नहीं की और घर-बार छोड़कर गेरुआ क्यों धारण कर लिया। वे बस उत्तेजित-से पढ़ाने आते, और उसी तरह उत्तेजित-से उठकर चले जाते।

एक दिन घड़ी ने तीन बजाए तो हम लोग रोज़ की तरह भागकर बैठक में पहुंच गए और दम साधकर अपनी-अपनी कुरसी पर बैठ गए। मगर काफी समय गुज़र जाने पर भी सीढ़ियों पर खट्खट् की आवाज़ सुनाई नहीं दी। एक मिनट, दो मिनट, दस मिनट। हम लोगों को हैरानी हुई—मुझे खुशी भी हुई। चार महीने में मास्टरजी ने पहली बार छुट्टी की थी। इस खुशी में मैं अंग्रेज़ी की कापी में थोड़ी ड्राइंग करने लगा। बहन से 'बी' और 'एफ्' हमेशा एक-से लिखे जाते थे—वह उनके अन्तर को पकाने लगी। मगर यह खुशी ज़्यादा देर नहीं रही। सहसा सीढ़ियों पर खट्-खट् सुनाई देने लगी, जिससे हम चौंक गए और निराश भी हुए। मास्टरजी अपने रोज़ के कपड़ों के ऊपर एक मोटा गेरुआ कंबल लिए बैठक में

पहुंच गए। मैंने उन्हें देखते ही अपनी बनाई हुई ड्राइंग फाड़ दी। वे हांफते-से आकर कुर्सी पर बैठ गए और दो घूंट पानी पीने के बाद 'पोइट्री' की किताब खोलकर पढ़ाने लगे :

"टेल मी नाट इन मोर्नफुल नंबर्ज़

लाइफ़ इज़ बट ऐन एम्प्टी ड्रीम···।"

मैंने देखा उनका सारा चेहरा एक बार पसीने से भीग गया और वे सिर से पैर तक कांप गए। कुछ देर वे चुप रहे। फिर उन्होंने गिलास को छुआ, मगर उठाया नहीं। उनका सिर झुककर बांहों में आ गया और कुछ देर वहीं पड़ा रहा। उस समय मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे सामने सिर्फ कंबल में लिपटी हुई एक गांठ ही पड़ी हो। जब उन्होंने चेहरा उठाया, तो मुझे उनकी नाक और आंखों के बीच की झुर्रियां बहुत गहरी लगीं। उनकी आंखें झपतीं और कुछ देर बंद ही रहतीं। फिर जैसे प्रयत्न से खुलतीं। वे होंठों पर जबान फेरकर फिर पढ़ाने लगते :

"फ़ार द सोल इज़ डेड दैट स्लंबर्ज़,

एंड थिंग्ज़ आर नाट वाट दे सीम।"

मगर उसके साथ उनका सिर फिर झुक जाता। मैंने डरी हुई-सी नज़र से बहन की तरफ देखा।

"मास्टरजी, आज आपकी तबियत ठीक नहीं है," बहन ने कहा। "आज हम और नहीं पढ़ेंगे।"

नहीं पढ़ेंगे—यह सुनकर मेरे दिल में खुशी की लहर दौड़ गई। मगर उस हिलती हुई गठरी को देखकर डर भी लग रहा था। मास्टरजी ने आंखें उठाईं और धीरे से कुछ कहा। फिर उन्होंने पुस्तक की तरफ हाथ बढ़ाया, तो बहन ने पुस्तक खींच ली। कुछ देर मास्टरजी हम लोगों की तरफ देखते रहे—जैसे हम उनसे बहुत दूर बैठे हों और वे हमें ठीक से पहचान न पा रहे हों। फिर एक लम्बी सांस लेकर चलने के लिए उठ

ग्रौर लॉन की घास को ठीक करता रहता था। कभी-कभी वह गुलदस्ते बनाकर भी कमरों में रख जाया करता था।

ग्रौर एक दिन बिना किसी भूमिका के माली मर गया। उसके मरने के साथ ही दोनों कुत्ते ग्रावारा हो गए। मैं पिछले ग्रढ़ाई साल से कोठी के एक हिस्से में रह रहा हूं। देखता हूं कि हर साल माली के संवारे हुए फूलों का विन्यास ग्रब बिगड़ता जा रहा है। ब्लूबेल गुलाब के साथ उलभ जाते हैं, ग्रौर डेलिया की सुर्ख पत्तियां पत्थर की दीवारों में से सिर निकाल लेती हैं।

दो साल पहले सितम्बर महीने की ही बात है। शाम को लौटकर घर ग्राया, तो देखा कि एक पहाड़ी युवती रास्ते की घास काट-काटकर एक तरफ ढेर में फेंक रही है। उसकी उम्र ग्रठारह से पच्चीस के बीच कुछ भी हो सकती थी। शरीर की रेखाग्रों को देखकर उसे केवल युवा कहा जा सकता था। उसने ग्रपनी कमीज़ कुहनियों से ग्रौर सलवार पिंडलियों से ऊपर तक उठा रखी थी। गोरे मांस के उन स्वस्थ युवा पिंडों में निर्माण का कुछ ऐसा कौशल था कि एक क्षण के लिए तो कोई भी ग्रपने को भूला रह जाता। सिर पर उसने ग्रपने रंगीन दोपट्टे को पटके की तरह बांध रखा था। उसे पास से देखकर मुझे कुछ वैसा ही रोमांच हुग्रा जैसा भरी हुई नदी के तट से उसके मन्थर प्रवाह को देखकर होता है।

घास के साथ-साथ वह उलभे हुए फूलों को भी काटकर घास के ढेर में फेंक रही थी। मेरे पास पहुंचने पर उसने एक उपेक्षा-भरी नजर मुझपर डाली ग्रौर फिर डेलिया का एक गुच्छा काटकर घास के ढेर पर फेंक दिया। डेलिया की पत्तियां घास पर इधर-उधर छिटक गईं।

"इन फूलों को क्यों काट रही हो?" मैंने पास रुककर उससे पूछा।

"पंडित ने कहा था कि ग्रापने कहा है।" बात कहते हुए उसके

चेहरे का भाव कुछ बदला, परन्तु उसकी आंखों के भाव में अन्तर नहीं आया।

"मैंने उससे कहा है ?"

"हां, उनने कहा था कि आपने कहा है।"

"तुम पण्डित की··· ?"

"मैं उसके घर हूं", कहते हुए अचानक उसके चेहरे पर हल्की-सी मुस्कराहट आ गई। परन्तु अगले ही क्षण वह मुस्कराहट गम्भीर रेखाओं में बदल गई।

"हो सकता है गुलेरी साहब ने उनसे कहा हो" कहकर मैं नीचे उतरने लगा।

"हां, उन्होंने ही कहा होगा", उसने पीछे से कहा और फिर अपने काम में व्यस्त हो गई।

गुलेरी साहब कोठी के दूसरे हिस्से में रहते हैं। वे गणित के अध्यापक हैं। उनके शरीर के साथ उनके जगह-जगह से उधड़े हुए सूट और सूट के साथ जगह-जगह से फटे हुए जूते का सामंजस्य देखकर अनायास याद हो आता है कि "ए इज़ ईक्वल टु बी, एण्ड बी इज़ ईक्वल टु सी, देयरफोर ए इज़ ईक्वल टु सी।" गुलेरी साहब स्वभाव से उपयोगितावादी है। वे हर चीज़ को इसी नज़र से देखते हैं कि उनके लिए वह कहां तक उपयोगी सिद्ध हो सकती है। उन्हें कोठी में उतने ही फूलों का उगना पसंद है जितने हर रोज़ फूलदानों में लगाए जा सकते हैं।

पंडित की पत्नी अब प्रायः हर रोज कोठी में घास काटती दिखाई दे जाती। वह उसी तरह पटका बांधे और कमीज़ की बाहें ऊपर चढ़ाए अपना काम किया करती। कभी वह साथ खुले स्वर में कोई पहाड़ी गीत गुनगुनाया करती। एक बार मैंने उसे सामने की

पहाड़ी से उतरकर आते देखा। वह जिस तरह कूदती और थिरकती हुई आ रही थी, उससे उसके अंग-अंग में बिजलियां-सी कौंधती प्रतीत होती थीं। पहाड़ी घास की पीली हरियाली और उगे हुए डंठलों की हल्की लाली भी उस समय मुझे पृष्ठभूमि का उपयुक्त सौन्दर्य लिए हुए प्रतीत हुई।

उसी समय मैंने पंडित को भी दूसरी तरफ से आते देखा। मुझसे दो-तीन फुट के फासले पर आकर वह जैसे चौंककर मुस्कराया और फिर सलाम करके आगे बढ़ गया। चश्मा लगा रहने पर भी वह शायद दूर से व्यक्ति को नहीं पहचान पाता था। कुछ आगे जाकर उसने उसी तरह चौंककर अपनी पत्नी को देखा और अखबारों का बंडल अपनी ढीली बांह में संभाले हुए उससे बात करने लगा।

मैं उस समय पंडित की उम्र के बारे में अनुमान लगाने लगा। क्षण-भर के लिए मुझे लगा कि उसकी उम्र पैंतीस-चालीस से अधिक नहीं है। गालों की झुर्रियों, निकले हुए घुटनों और मरी-मरी चाल के बावजूद उसके चेहरे में कुछ ऐसा था जिससे यह आभास होता था। परन्तु फिर मैंने टूटे हुए चश्मे के पीछे उसकी आंखों को देखा, और मुझे लगा कि वर्षों की गिनती करने का कोई अर्थ नहीं, उसकी निश्चित उम्र बुढ़ापा ही है।

कई महीने बीत गए। बरसात शुरू होने के दिन आ गए थे। हल्के-हल्के बादल घाटियों में भर रहे थे और आकाश में फैल रहे थे। दोपहर से ही संध्या का आभास होने लगा था। हल्की-हल्की बूंदा-बांदी भी चल रही थी। वातावरण में वर्षा की ध्वनि एक सिहरन की तरह फैल रही थी। चीड़, देवदार, अलूचा और खूबानी, सब तरह के छोटे-बड़े पेड़ रस की वर्षा में सिहरते हुए खड़े थे। वे नन्हीं-नन्हीं बूंदें प्यास बुझानेवाली न होकर प्यास जगाने वाली ही थीं। कभी-कभी घने झुरमटों में से हल्की-

सा च्यों-च्यों की आवाज़ सुनाई दे जाती थी।

मैं चार बजे से पहले ही घर लौट आया था। मौसम को देखते हुए मन हो रहा था कि मेज़ पर टांगें फैलाकर और काफी की प्याली सामने रखकर बैठ रहा जाए। स्टोव पर केतली रखकर मैं खिड़की के पास आ बैठा। बाहर नन्हें-नन्हें ओले पड़ रहे थे। कुछ ओले देवदार की छतरियों से टकराकर उछल जाते थे। ऊपर टीन की छत पर ओलों के गिरने की एकतार आवाज़ वातावरण में एक रोमांचक संगीत भर रही थी।

केतली में पानी खौल गया, तो मैंने उठकर अपने लिए कॉफी की प्याली बना ली। प्याली मेज़ पर रखकर खिड़की के नीचे फर्श की तरफ देखा जहां पण्डित अख़बार फेंक जाया करता था। अखबार नहीं था। वैसे तो रोज़ ही पंडित अखबार देर से दे जाता था, मगर इतनी देर कभी नहीं हुई थी। मैं बैठकर कॉफी के घूंट भरने लगा। फिर दास्ताएव्स्की का उपन्यास 'ब्रदर्ज़ करेमैज़ॉफ़' उठा लिया जिसके दो सौ के लगभग पन्ने पढ़ने शेष थे।

कुछ देर बाद अंधेरा बढ़ जाने से टेबल लैम्प जला लिया। अदालत में पब्लिक प्रॉसीक्यूटर द्वारा रूस की अनैतिकता पर दिया गया भाषण पढ़ रहा था, जब सहसा बाहर से पण्डित की आवाज़ सुनाई दी, "अखबार जी !" और खिड़की के रास्ते अखबार अन्दर आ गिरा।

"यह अखबार देने का वक्त है पण्डित ?" खिड़की से देखा कि पंडित सिर पर एक बोरी ओढ़े हुए है, उसके कपड़े तीन-चौथाई भीग रहे हैं, और उसके गीले बंडल में कम से कम चालीस-पचास अखबार और हैं।

"आज तो जी कहीं भी अखबार नहीं दे पाया," पंडित ने कुछ दीनता के साथ कहा। "इधर की चार कोठियों के अखबार देकर यह पांचवा अखबार आपका देने आया हूं।"

मुझे लगा कि उसकी आवाज़ में वातावरण से कहीं ज़्यादा नमी है।

था कि यह मेरे साथ इस तरह दगा करेगी ?"

पानी खौलने लगा था। मैंने उठकर दो प्यालियों में कॉफी बनाई और चम्मच में चीनी लेते हुए पंडित से पूछा, "पंडित, चीनी कम लेते हो या ज़्यादा ?"

"कम जी !" पंडित ने बिलकुल निर्लोभ व्यक्ति की तरह कहा। मैंने दो चम्मच चीनी मिलाकर प्याली उसे दे दी। पंडित ने एक घूंट भरा और गले से हल्का-सा खेदपूर्ण हंसी का-सा स्वर निकालकर बोला, "बहुत ही कम डाल दी जी !"

मैंने उसकी प्याली में एक चम्मच चीनी और मिला दी। पंडित ने फिर घूंट भरी और बोला, "कुछ-कुछ हो ही गई अब !"

मैंने चीनी की प्याली उसकी तरफ बढ़ा दी। पंडित ने एक चम्मच चीनी और मिला ली और फिर संतोष की 'हूं' के साथ चाय के घूंट भरने लगा। मैं अपनी प्याली लिए हुए अपनी जगह पर लौट आया।

"उसका बाप भी उसकी जान को रो रहा था।" पंडित बोला।

"उसे पता चल गया है कि उसकी लड़की घर से भाग गई है ?"

"हां जी। मैं उसके पास भी हो आया हूं। मैंने उससे कहा कि तेरी लड़की मेरे घर से भाग गई है और तेरी रज़ामन्दी से भागी है—मैं तुझ-पर अढ़ाई सौ रुपये का दावा करूंगा। हां जी, डेढ़ सौ रुपया नकद दिया था और इतने दिन खिलाने-पिलाने के कम से कम भी लगाएं तो सौ से कम क्या लगाएंगे ?"

"फिर उसने क्या कहा ?"

"गरीब आदमी है, बहुत मिन्नत करने लगा। मैंने भी सोचा कि इसे रुपये के लिए तंग करना ठीक नहीं। बेचारा देगा कहां से ? मैंने कहा कि यूं कर कि जब तक वह लौटकर नहीं आती तब तक के लिए अपनी छोटी लड़की को मेरे यहां भेज दे। हां, कम से कम मेरे घर में

चूल्हा तो जलता रहे। मैं दावा नहीं करूंगा।"

"तो वह मान गया ?"

"अभी उसने हामी नहीं भरी, पर उम्मीद है मान जाएगा। नहीं तो रुपया कहां से देगा ?" और खाली प्याली फर्श पर रखकर मुंह पोंछते हुए पण्डित ने कहा, "वैसे आदमी अच्छा है। नीयत का साफ है। दो आदमी समझाएंगे तो समझ जाएगा। यह बात उसके भी भले की है और मेरे भी। अदालत में जाना कोई अच्छी बात थोड़े ही है ?"

और उठकर अखबारों का बंडल संभालते हुए उसने कहा, "अब आगे देखिए क्या होता है !"

और हुआ यह कि कुछ दिनों में पंडित की पत्नी की जगह पण्डित की साली घास काटने आने लगी। उम्र कम होने पर भी वह देखने में पंडित की पत्नी की तरह सुन्दर नहीं थी। यूं वह भी उसी तरह दोपट्टे को पटके की तरह बांधे हुए गीत गुनगुनाती हुई घास काटा करती। परन्तु उसकी आंखों में न तो वैसी चंचलता थी और न ही संसार-भर के प्रति वैसा उपेक्षा का भाव। पंडित की पत्नी के भाग जाने का किस्सा धीरे-धीरे पुराना पड़ने लगा। दो, चार, छः महीने और इसी तरह पूरा साल निकल गया।

इतवार का दिन था। मैं खिड़की के पास बैठा कुछ पढ़ने की चेष्टा कर रहा था। बाहर एक पेड़ पर कुल्हाड़ी चलाने का शब्द सुनाई दे रहा था। गुलेरी साहब ने शायद अपने नौकर गुलाबसिंह को आदेश दिया था कि लॉन के उन वाले हिस्से में जो छोटा-सा खूबानी का पेड़ है, उसे काट दिया जाए और उसकी लकड़ी जलाने के काम में ले आई जाए, क्योंकि खूबानियां तो उससे साल में सेर भर ही उतरती थीं जबकि उसकी लकड़ी से चार-छः महीने चूल्हा जल सकता था। तो खूबानी का पेड़ कट रहा था। ठक्-ठक् की वह आवाज़ मेरे दिमाग में बहुत अन्दर कहीं गूंज

पैदा कर रही थी।

मैं देवदारों में भटकती हुई एक चिड़िया को देखने लगा। वह कभी ऊपर जाती, कभी नीचे आती और कभी उलझी हुई टहनियों में गोल घूम जाती। सहसा पेड़ के कटकर ज़मीन पर गिरने का शब्द सुनाई दिया और साथ ही स्त्री-कण्ठ का यह शब्द, "गुलाबसिंह, ऊपर की पतली टहनियां हमें तोड़ लेने दे।"

मैंने आवाज़ पहचान ली। वह आवाज़ पंडित की पत्नी की थी। मैं उठकर खिड़की के पास चला गया। लॉन में गिरे हुए पेड़ के पास पंडित की पत्नी और साली दोनों खड़ी थीं।

"तू इन टहनियों का क्या करेगी ?" गुलाबसिंह पूछ रहा था।

"टहनियां जला लेंगे और पत्तियां गाय को खिला देंगे।"

"तेरी मुन्नी सुना है बीमार थी। अब क्या हाल है ?" गुलाबसिंह ने पूछा।

"अब तो अच्छी है।"

"इसकी कौन-सी मुन्नी है ?" गुलेरी साहब ने अपने कमरे से बाहर निकलकर पूछा। यही सवाल मेरे मन में भी उठा था। क्योंकि न जाने क्यों पंडित की पत्नी के बच्चा होने की कल्पना कुछ अस्वाभाविक-सी लगती थी।

"मुन्नी इसकी गाय का नाम है," कहकर गुलाबसिंह हंसने लगा।

"अच्छा-अच्छा !" गुलेरी साहब भी लिजलिजे ढंग से हंसे और बोले, "ले लेने दे इसे दो-चार टहनियां। ऊपर-ऊपर से तोड़ ले पंडितानी।" और पंडितानी पर एक रसिकता-भरी नज़र डालकर वे वापस कमरे में चले गए। पंडित की पत्नी और साली मिलकर टहनियां तोड़ने लगीं। गुलाबसिंह कुल्हाड़ी से पेड़ की मोटी डालें काटने लगा। बीच में एक बार उसने सिर उठाकर ऊपर सड़क की तरफ देखा और

कहा, "लो, पण्डित भी आ गया !"

पण्डित अखबारों का बंडल संभाले ऊपर की सड़क से उतरकर आ रहा था। लॉन में पहुंचकर वह कुछ देर अपनी पत्नी और साली के काम की जांच करता रहा। फिर अखबार देने मेरी खिड़की के पास आ गया। मैंने हाथ बढ़ाकर अखबार ले लिया। पण्डित बाकी अखबारों को बांह में संभालता हुआ पल-भर चुप रहा, फिर ज़रा खंखारकर बोला, "जी, आ गई है।"

"अच्छा !" मैंने अखबार पर नज़र दौड़ाते हुए सरसरी तौर पर कहा।

पण्डित ने एक बार पीछे अपनी पत्नी और साली की तरफ देखा और फिर कमरे के अन्दर आ गया। मेरे बहुत पास आकर ऐसी आवाज़ में जो उसके खयाल में शायद बहुत धीमी थी, मगर दर-असल में इतनी ऊंची ज़रूर थी कि बाहर लॉन में सुनाई दे जाए, बोला, 'परसों थाने में उन्होंने मुझे शनाख्त के लिए बुलाया था। वे लोग इसे मंडी से पकड़कर लाए हैं। इसके यार को भी उन्होंने गिरफ्तार कर लिया है। मैं तो जी, बिलकुल उम्मीद ही छोड़ बैठा था। इतने दिन हो गए थे। पर नहीं। सरकार के घर में देर है, अंधेर नहीं। उन्होंने भी खोज-खबर छोड़ी नहीं। कहां शिमला, कहां मण्डी। पकड़कर ले ही आए।"

उसकी बात सुनते हुए मेरा ध्यान बार-बार बाहर की तरफ चला जाता था। पंडित की पत्नी ने एक बार घृणा के साथ मेरे कमरे की तरफ देखा और फिर तोड़ी हुई टहनियों को समेटने लगा। अन्दर पंडित कह रहा था, "कल जी, इसके बाप ने इसे खूब पीटा। पर ऐसी ढीठ औरत है कि चुपचाप मार खा गई, मुंह से एक बात का जवाब नहीं दिया। वह तो मैं बीच में पड़ गया, नहीं वह तो इतने गुस्से में था कि इसकी चमड़ी उधेड़कर रख देता। मैंने उससे कहा कि अब मार-पीट

करने से क्या फायदा है? जो मुंह काला करना था, वह तो कर ही आई। आगे से अपनी निगरानी में रखेंगे। क्या कहते हैं?"

पंडित की पत्नी और साली टहनियां उठाकर ऊपर सड़क की तरफ चल दी थीं। मैं क्षण-भर पंडित की आंखों में देखता रहा। फिर मैंने पूछा, "तो अब तुम्हारी साली अपने बाप के घर लौट जाएगी?"

"वह अब कहां जाएगी जी?" पंडित बोला, "मैंने आपसे कहा था, इनका बाप बहुत गरीब आदमी है। उसके पास इसे खिलाने के लिए एक पैसा भी नहीं है। उसको इसका सौ-सवा सौ चाहिए, सो मैं ही उसे दे दूंगा। इतने दिनों से घर में रही है, सो अब छोड़ने को मन नहीं करता। आदमी को आदमी से मोह हो जाता है। और क्या पता कल को बड़ी फिर भाग जाए! ऐसी का कोई भरोसा थोड़े ही है!"

पंडित की पत्नी और साली कोठी से निकलकर सड़क के मोड़ पर पहुंच गई थीं। गुलाबसिंह कटी हुई डालों पर कुल्हाड़ी चला रहा था। गुलेरी साहब फिर बाहर निकलकर उसे आदेश दे रहे थे कि लकड़ियां खूब बारीक काटे जिससे जलाने में आराम रहे।

"पंडित, अखबार ज़रा जल्दी दे जाया करो," मैंने बात बदलकर कहा, "आजकल तुम बहुत देर कर देते हो। आज भी देखो दो बजने को हैं?"

"कल से जल्दी दे जाऊंगा जी!" पंडित ने तत्परता के साथ कहा और अखबारों को संभालता हुआ बाहर की तरफ चल दिया। कुछ ही देर में गुलेरी साहब के कमरे से उसकी आवाज़ आने लगी। वहां भी वह उसी विषय में बात कर रहा था।

पंडित अब भी अखबार देर से लाता है। उसकी ज़िंदगी उसी तरह चल रही है। वह वही पुराना कोट पहनता है जिसकी जेबों की जगह उधड़े हुए धागों के निशान दिखाई देते हैं, और जिनका आगे का अकेला बटन

अपनी जगह से आधा इंच नीचे लटकता रहता है। उसकी कमीज़ के बटन हमेशा की तरह खुले रहते हैं जिससे उसकी छाती की हड्डियां नीचे तक दिखाई देती हैं। हमेशा की तरह वह बाईं टांग पर दबाव देकर टोड़ी को सहलाता हुआ रास्ते पर चला करता है। कभी वह अखबारों के बंडल पर बैठकर रिक्शा स्टैंड के कुलियों के साथ तंबाकू पीता है, तो कभी वह बंडल पगड़ी के नीचे रखकर पगड़ी पर सिर टिकाए किसी पेड़ के नीचे सोया रहता है। कभी अखबार रास्ते में पत्थर के नीचे रखे रहते हैं, और वह इधर-उधर की झाड़ियों से पतली-पतली टहनियां चुन रहा होता है।

पंडित की पत्नी भी प्रायः घास काटती दिखाई दे जाती है। अब उसके शरीर में वह चमक नहीं रही और मांस का कसाव भी पहले से कम हो गया है, फिर भी जब वह चलती है, तो उसके अंगों में अब भी वे पहले की-सी बिजलियां कौंधती प्रतीत होती हैं। उसकी आंखें पहले से लाल रहती हैं और वह चलती-चलती रुककर अकारण पत्थरों को ठोकरें लगाने लगती है।

पंडित को लोग अक्सर उसकी पत्नी के लौट आने की मुबारकबाद देते हैं। पंडित सलाम करके एक हल्की-सी हंसी हंसता है और कहता है, "आपकी परवस्ती थी हज़ूर, परमात्मा का इन्साफ था और मेरा हलाल का पैसा था। वरना, मैंने कोई उम्मीद थोड़े ही रखी थी ?"

और यह कहते हुए उसके चेहरे का भाव बहुत धार्मिक हो जाता है।

बस स्टैण्ड की एक रात

···लैम्प पोस्ट के इर्द-गिर्द कितने ही चक्कर काट लिए मगर रात नहीं कटी। बीस फुट की ऊंचाई पर टंगे हुए लैम्प की मद्धिम रोशनी कभी आंखों में हल्की-हल्की नींद भर देती है, फिर सहसा चौंकाकर नींद खोल देती है। अड्डा बिलकुल सुनसान है। एक कोने में दो छोटी-छोटी छकड़ा-नुमा बसें खड़ी हैं। शायद इन्हीं पुरानी मनहूस और बेडौल बसों में से एक सुबह पांच बजे की सर्विस के तौर पर रवाना होगी।

एक, दो, तीन, चार···सर्दी की रात में जागकर समय काटने का एक ही रास्ता है कि कदम गिने जाएं। दस, ग्यारह, बारह····बयालीस, तैंतालीस, चवालीस···छप्पन, सत्तावन, अट्ठावन···परन्तु संख्या सौ तक नहीं पहुंचती, हर बार बीच में ही खो जाती है। फिर नये सिरे से नये विश्वास के साथ गणना आरम्भ होती है···एक, दो, तीन, चार, पांच-छः, सात-आठ···।

बाईं ओर टूटा-फूटा बरामदा है। बरामदे के पीछे लम्बा-सा अंधेरा कमरा है। बरामदे की बेंच पर कोई लिहाफ के नीचे करवट लेता है। कमरे में कोई कुनमुनाता है, जैसे गहरी यातना में कराह रहा हो। देखने पर वहां अंधेरा ही अंधेरा नज़र आता है। लगता है वह अंधेरा बाहर

के अंधेरे से कहीं घना और गर्म है। जैसे सारे कमरे में कोमल काले रोएं भरे हों।

लैम्प पोस्ट के पास जाकर सर्दी कम नहीं होती मगर अकेलापन जरूर कुछ कम होता है। टहलते हुए फुटपाथ की तरफ चले जाओ तो दूर तक लम्बी वीरान सड़क नजर आती है। लैम्प पोस्ट के पास आकर लगता है कि दुनिया उतनी वीरान नहीं है। मैं लैम्प पोस्ट से टेक लगा लेता हूं जैसे लैम्प पोस्ट, लैम्प पोस्ट न होकर, एक इन्सान हो और मैं उससे टेक लगाकर उसे अपनी आत्मीयता का विश्वास दिलाना चाहता होऊं। मगर शरीर में ठण्डे लोहे की सलाख-सी गड़ जाती है और मैं हट-कर टहलने लगता हूं।

एक, दो, तीन, चार...।

पर गिनती सौ तक नहीं पहुंचती। हाथों पर मास्टर हरबंसलाल के डंडे की मार ताजा हो आती है।

"सत्तर नौ ?"

"उनहत्तर।"

"स्टैण्ड अप !...अस्सी नौ ?"

"उनासी।"

"अस्सी नौ उनासी ? हाथ सीधे कर।....अस्सी नौ ?"

"उना-आ...।"

दो डंडे दाएं हाथ पर, दो बाएं हाथ पर।

"अब अस्सी नौ ?"

अब अस्सी नौ सिसकियां और आंसू।

"कह, अस्सी नौ नवासी।"

"अ-अ-अ...।"

"बोल दस बार, अस्सी नौ नवासी, अस्सी नौ नवासी।"

"अ-अ-अ···।"

"बोऽऽल ।"

"अ-अ-अ···अं-अं···आं-आं-आं-आं···।"

कमरे में किसीने सिगरेट सुलगा लिया है। हर कश के साथ अंधेरा कुछ कम होता है। कमरे मे भी लिहाफों और कम्बलों में लिपटी हुई आकृतियां पड़ी हैं जो एक क्षण दिखाई देती हैं और दूसरे क्षण अदृश्य हो जाती हैं। पता नहीं चलता कि रात कितनी बीती है। शायद एक बजा है और मुझे अभी चार घंटे इसी तरह टहलना है। या शायद चार बज चुके हैं और अब थोड़ी ही देर में उन दो मनहूस बसों में से एक खड़-खड़ाती हुई पठानकोट-डलहौजी रोड पर चल पड़ेगी, छः-आठ मील जाकर सूर्य निकलेगा और दोनों ओर वृक्ष-पंक्तियां दिखाई देंगी और कुछ ही देर बाद दुनेरा पहुंचकर सिब्बू हलवाई की दुकान से गर्म-गर्म चाय पिएंगे।

सर्दी, रात और चाय।

"चाय गर्म है। धुआं उठ रहा है। हल्का-हल्का और लच्छेदार। मेरी प्याली पर नटराज नाच रहा है···।"

हिश्च !

सिगरेट बुझ गया है मगर कमरे का अंधेरा फिर भी उतना गाढ़ा नहीं है। कोई लगातार खांस रहा है। मेरा मन होता है कि वह व्यक्ति लगातार खांसता रहे जिससे जल्दी से सुबह हो जाए। वह खांसना बन्द कर देगा तो सुबह दूर हो जाएगी। मुझे नीरवता अच्छी नहीं लगती और न ही मुझसे कदम गिने जाते हैं और न ही लैम्प पोस्ट का मुंह देखा जाता है। मुझे लगता है कि सर्दी पहले से बढ़ गई है। मैं लैम्प पोस्ट से हटकर टहलता हूं। जैसे लैम्प पोस्ट से लड़ाई हो। मैंने अब तक कितना चल लिया है? शायद कई मील। कितने कदम का एक मील होता है? मास्टर हरबंसलाल फिर डंडा लेकर सामने है।

"इकत्तीस हज़ार···।"

"इकत्तीस हज़ार···।"

• "छः सौ···।"

"छः सौ···।"

"अस्सी फुट के···।"

"अस्सी फुट के···।"

"मील बनाओ।"

हम जैसे अथाह समुद्र में फेंक दिए गए हों। सवाल निकलने लगता है। स्लेट पर मास्टर हरबंसलाल का गंजा सिर और छोटी-छोटी आंखें बन जाती हैं। एक तरफ इकत्तीस हज़ार, दूसरी तरफ छः सौ और तीसरी तरफ अस्सी···।

सिर पर एक चपत पड़ती है।

"यह फुटों के मील बना रहा है? स्टैंड अप!"

खड़े हो जाते हैं। सिर झुका हुआ है।

"यह क्या बन रहा है?"

सिर झुका रहता है। मन में गुदगुदी उठती है। पर चेहरे पर आध्यात्मिक मौन है।

"चल वहां कोने में मुर्गा बन।"

चुपचाप कोने में जाकर मुर्गा बन जाते हैं। आशंका होती है कि पीछे से डंडे भी पड़ेंगे मगर शायद स्लेट पर बनी हुई आकृति मास्टर हरबंसलाल से पहचानी नहीं जाती। दो बार कान छोड़कर और सिर उठाकर देखते हैं। मास्टर हरबंसलाल के जूते चिर्र-मिर्र करते हुए दूर होते जाते हैं। मुर्गा अपनी बोली बोल देता है।

एक कदम अगर डेढ़ फुट का हो तो मील में कितने कदम हुए? सत्रह सौ साठ जरब तीन तकसीम...। इस समुद्र में गोता लगाने से

अच्छा है कदम गिने जाएं। लैम्प पोस्ट से लड़ाई है। कदम स्टेशन रोड पर बढ़ने लगते हैं। एक, दो, तीन, चार। स्टेशन पर शायद चाय भी मिल जाए। सर्दी की रात में चाय की एक गर्म प्याली से अच्छी कोई चीज़ नहीं। मतलब इस हाल में···।

स्टेशन अंदर और बाहर से सुनसान है।

हाथ मलते हुए—शाब्दिक अर्थ में—वापस लौटते हैं।

दोनों ओर छः-छः, आठ-आठ बसें पंक्तियों में खड़ी हैं। एक ओर कश्मीर गवर्नमेंट ट्रांसपोर्ट और एन्० डी० राधाकिशन की बसें हैं, और दूसरी ओर कुल्लू वैली ट्रांसपोर्ट और हिमाचल राज्य परिवहन की। उन पंक्तियों के बीच से गुज़रते हुए अनायास टांगें तन जाती हैं···लेफ्ट··· लेफ्ट···लेफ्ट···एक दो, एक दो, एक दो, लेफ्ट···लेफ्ट···लेफ्ट···

हज़ारी लाल ड्रिल मास्टर भौंहें चढ़ा रहा है।

"लाइन में चलो।"

लेफ्ट···लेफ्ट···लेफ्ट···

"आगे के लड़के की गरदन को देखो।"

लेफ्ट···लेफ्ट···लेफ्ट···

आगे के लड़के की गरदन पर मैल जमा है।

"मास्टर जी, यह नहा कर नहीं आया।"

"डोंट टॉक!"

लेफ्ट राइट···लेफ्ट···लेफ्ट···लेफ्ट···

"मास्टरजी, यह पीछे से किक मारता है।"

"शट अप!"

लेफ्ट···लेफ्ट···लेफ्ट···

दूर से अड्डे पर आग दिखाई देती है। अड्डे पर आग कहां से आ गई? धुएं से घिरी हुई एक लपट उठ रही है। अभी यह लपट छोटी है।

धीरे-धीरे यह फैलकर बड़ी हो जाएगी। फिर वह आस-पास की हर चीज़ को व्याप्त कर लेगी। दोनों छकड़ानुमा बसें जल कर राख हो जाएंगी। कमरे में बन्द अंधेरे के कोमल रोएं सुलग उठेंगे।

मगर लपट छोटी हो जाती है। अड्डे पर अंगीठी जल रही है और धुआं छोड़ रही है। आस-पास चार-छः आकृतियां जमा हैं। कांपते हुए प्रकाश में चेहरों की रेखाएं ही दिखाई देती हैं। एक स्त्री का ढीला-ढाला शरीर सरककर आग के बहुत निकट हो जाता है।

"चौधराइन, आज कुछ कमाई हुई ?"

चौधराइन मुंह बिचका देती है।

"नूरजहां बेगम आजकल बात नहीं करती !"

नूरजहां बेगम कुछ न कहकर पिंडली खुजलाने लगती है।

"चाय पिएगी ?"

नूरजहां बेगम फिर मुंह बिचका देती है।

"नूरजहां बेगम, उदास क्यों है ? इसलिए कि तेरा बाप कोढ़ी मर गया है ?"

नूरजहां बेगम चुपचाप आग तापती रहती है।

"आज सर्दी बहुत है।"

"नूरजहां बेगम को दुअन्नी दे और साथ ले जा।"

"क्यों नूरजहां ?"

नूरजहां कुछ नहीं कहती।

"आज चौधराइन मस्ती में है।"

"अरे तुम चौधराइन को क्या समझते हो ? किसी खानदान में पैदा होती तो क्लब में डान्स किया करती।"

"हा-हा-हा !"

"चौधराइन डानस करेगी ?"

"हो-हो-हो !"

"यहीं कराओ इससे डानस ।"

"अरे नहीं, बेचारी सर्दी में मर जाएगी ।"

"यह आप अंगीठी है, यह क्या मरेगी !"

"चुप रह बदज़ात !" अंगीठी तमक उठती है ।

"आज दिमाग तेज़ है ।"

"नूरजहां बेगम, रात को क्या खाया है ?"

"मुर्ग मुसल्लम ।"

"हा-हा-हा !"

"कदम आग की ओर बढ़ते हैं और लौट पड़ते हैं । फिर बढ़ते हैं और फिर लौट पड़ते हैं ।

पिताजी अपनी घूमनेवाली कुर्सी पर बैठे हैं ।

"अच्छे लड़के गन्दे लड़कों से नहीं खेलते । समझे ?"

"जी ।"

"कल से घर के अन्दर खेला करो । मैं अब बाज़ार के लड़कों के साथ न देखूं ।"

"जी ।"

"जाकर हाथ-मुंह धोओ और कपड़े बदलो ।"

"जी ।"

और मैं दूर टहलता रहता हूं, हालांकि हाथ-पैर ठिठुरे जाते हैं और दांतों की किटकिटी बार-बार बज उठती है ।

कमरे में कुछ हलचल हो रही है । शायद सुबह होनेवाली है । कम्बलों में लिपटे हुए दो व्यक्ति कमरे से निकल आते हैं । केवल नाक और आंखें ही दिखाई देती हैं । अंगीठी के पास जाकर वे आंखें अधिकार-भाव से भभकती हुई आग को देखती हैं । अंगीठी के इर्द-गिर्द बैठी हुई

आकृतियां थोड़ा-थोड़ा सरक जाती हैं।

"आ जाइए बाबूजी।"

"बाबूजी, पांच बजे की बस पर जाएंगे ?"

"कितना सामान है बाबूजी ?"

"हट बे, बाबूजी को सेंकने दे।"

कम्बलों में लिपटे हुए दोनों बाबू अंगीठी पर अधिकार कर लेते है। शेष आकृतियां हटने लगती हैं। चौधराइन सरककर लैम्प पोस्ट के नीचे चली जाती हैं। एक आदमी सीटी बजाता हुआ बस के मड गार्ड पर जा बैठता है। केवल एक बुड्ढा कुली आग के पास रह जाता है। वह अंगीठी से इतना सटकर बैठा है जैसे अपने हाथों की झुलसी हुई चमड़ी को जला लेना चाहता हो। कमरे से दो-तीन व्यक्ति और निकल आते हैं।

"आ जाओ बसन्तराम जी, यहां आग के पास आ जाओ।"

दोनों-तीनों बसन्तराम आग के पास पहुंच जाते हैं। मैं कदमों की गिनती भूल चुका हूं। लैम्प पोस्ट ने चौधराइन से मैत्री कर ली है। वह उससे टेक लगाकर पिंडली खुजला रही है। बस के मड गार्ड पर बैठा व्यक्ति तारस्वर में अपने दिल के हज़ार टुकड़ों की गाथा सुना रहा है। मैं टहलता हुआ अंगीठी के पास पहुंच जाता हूं। इस बार अच्छे लड़के को डांट नहीं पड़ती क्योंकि अंगीठी के पास सब बसन्तराम खड़े हैं।

"बड़ी सर्दी है," एक कांप कर कहता है।

"बड़ी जबर-जुलम सर्दी है जी," बुड्ढा कुली आंखें उठाकर सबकी ओर देखता है। उसकी आंखें इस बात पर उनसे मैत्री करना चाहती हैं कि उन सबको बराबर की जबर-जुलम सर्दी लग रही है। मगर उनमें से कोई मास्टर हरबंसलाल बोल उठता है, "अरे जबर-जुलम क्या होता है ? बोलना हो तो ठीक लफज बोल—जाबिर और जालिम।"

बुड्ढा कुली हक्का-बक्का उसकी ओर देखता रहता है।

ज़ाबिर और ज़ालिम !

ज़ेर और ज़बर !

"मास्टर जी ज़ेर कहां लगती है ?"

एक डंडा टखनो पर।

"यहां।...और ज़बर यहां।"

और एक डंडा गरदन पर।

ज़ेर टखनों पर। ज़बर गरदन पर।

कमरे से दो-तीन बसन्तराम और निकल आते हैं। आग के इर्द-गिर्द खासा जमघट हो गया है। बुड्ढे कुली की आंखें बीच-बीच में ऊपर उठती हैं, जैसे गौरीशंकर की चोटी तक पहुंचना चाहती हों मगर रास्ते में ही फिसल जाती हों। वह खांसता है और अपने में सिकुड़ जाता है। उसके हाथ अंगीठी के कोयलों को ढक लेना चाहते हैं पर अंगीठी बीच-बीच में चिनगारियां छोड़ देती है। कुछ कोयले अभी जले नहीं हैं। बुड्ढा कुली गर्म हाथ मुंह पर फेरता है।

"बाबा, सारी आग तो तूने रोक रखी है।"

"अब उठ जा, दूसरों को भी सेंकने दे।"

बाबा खांसता है, याचना की दृष्टि से सबकी ओर देखता है और थोड़ा सरक जाता है।

"बुड्ढे को जान बहुत प्यारी है।"

बुड्ढा आंखों से इसका अनुमोदन करना चाहता है मगर उसके और अंगीठी के बीच एक दीवार खड़ी हो जाती है। वह एक दार्शनिकतापूर्ण सांस छोड़कर उठ खड़ा होता है। उठकर हाथ बगलों में दबा लेता है जैसे अपने आस-पास की गर्मी को समेटकर ले जाना चाहता हो।

अंगीठी चिनगारियां छोड़ रही है।

"क्यों भाई साहब, क्या खयाल है, गवा हिन्दुस्तान को मिल जाएगा

या नहीं ?"

"गोम्रा हिन्दुस्तान का है साहब, और हिन्दुस्तान का ही रहेगा।"

"कहते हैं गवा बहुत खूबसूरत जगह है।"

"जी हां, गोम्रा का लैण्ड स्केप—क्या कहने हैं !"

"यहां से गवा किस रास्ते से जाते हैं ?"

"यहां से गोम्रा जाना हो तो पहले पूना, पूना से लोंडा, फिर वहां से गाड़ी में मार्मुगाव...मार्मुगाव नेचुरल हार्बर है। बहुत खूबसूरत जगह है।"

"ग्राप गवा गए हैं ?"

"जी हां, मैं एक बार गोम्रा हो आया हूं।"

"कहते हैं गवा में सभी कुछ बहुत सस्ता है।"

"माफ कीजिए भाई साहब, लफ्ज़ गवा नहीं गोम्रा है।"

"एक ही बात है जी, गवा हुम्रा या गोम्रा हुम्रा।"

"यह साहब, हिन्दुस्तानी मेंटेलिटी है।"

"जैसे ग्राप हिन्दुस्तानी नहीं हैं !"

कोयले सुलग गए हैं। गर्मी शरीर में रच रही है। ग्रब दांतों की किटकिटी नहीं बजती। मड गार्ड पर बैठा हुम्रा कुली ग्रपने दिल के टुकड़े विखेरकर खामोश हो गया है ग्रौर इस तरह उकड़ूं होकर बैठा है जैसे सिर से पैर तक शरीर के हर ग्रंग को छाती में समेट लेना चाहता हो। बुड्ढा कुली खांसता हुम्रा फुट-पाथ पर खड़ा है ग्रौर इस तरह दाईं ग्रोर देख रहा है जैसे सुबह के ग्राने का इन्तज़ार कर रहा हो। चौधराइन लैम्प पोस्ट के पास ग्रर्द्धचन्द्राकार होकर लेट गई है ग्रौर वह ग्रर्द्धचन्द्र धीरे-धीरे छोटा हो रहा है।

ग्रंगीठी के पास गोम्रा की समस्या को लेकर लड़ाई लड़ी जा रही है। एक भाई साहब चौबीस घंटे के ग्रन्दर-ग्रन्दर पुर्तगालियों को गोम्रा से निकाल देना चाहते हैं। दूसरे साहब वाइन, विमेन एण्ड वाचिज़ के विषय

में सुनकर अन्तर्मुख हो गए हैं। मेरे शरीर में गर्म बुंदकियां भर रही हैं। मैं लैम्प पोस्ट की ओर देखता हूं, जैसे कहना चाहता होऊं—क्यों बे ?

"हीरे !" बरामदे की तरफ से आवाज आती है।

मड गार्ड पर बैठा हुआ कुली चौंकता है और भागता हुआ बरामदे की तरफ चला जाता है। फिर वह नये सिरे से दिल के टुकड़े बिखेरता हुआ अंगीठी के पास आ जाता है।

"हट जाओ सा'ब।"

और इससे पहले कि साहब हटने की बात सोचें वह दोनों कुंडों से पकड़कर अंगीठी उठा लेता है।

"अबे कहां ले जा रहा है ?"

"मैनेजर साहब के कमरे में।"

अंगीठी के प्रकाश में उसके चेहरे पर एक लम्बी मुस्कराहट व्यक्त होती है। वह इस तरह टांगें फैलाकर कंधे हिलाता हुआ जाता है जैसे किसी मोर्चे में उसे फतह का सेहरा हासिल हुआ हो।

गोआ की लड़ाई बीच में ही रह गई है। चौबीस घंटे के अन्दर-अन्दर पुर्तगालियों को निकालनेवाले भाई साहब कम्बल अच्छी तरह लपेटकर कमरे की तरफ चले गए हैं। गवा और गोआ का भेद करने-वाले भाई साहब शिकायत कर रहे हैं कि मैनेजर को अंगीठी अपने कमरे में मंगवाने का कोई अधिकार नहीं।

मैं बगलों में हाथ दबाकर टहलने लगता हूं। आग के पास से हट-कर सर्दी और भी जाबिर और ज़ालिम प्रतीत होती है। सारे शरीर के रोंगटे खड़े हैं और सिहरन दौड़ जाती है। अंगीठी के पास जितने लोग खड़े थे, वे न जाने किन कोनों में जा समाए हैं ? मैं फुटपाथ तक जाकर लौटता हूं। शरीर फिर कांप जाता है। लैम्प पोस्ट मुस्करा रहा है। वह एकटक देखता जाता है। जैसे अब वह कहना चाहता हो—क्यों बे ?

जीनियस

जीनियस काफी की प्याली आगे रखे मेरे सामने बैठा था।

मैं उस आदमी को ध्यान से देख रहा था। मेरे साथी ने बताया था कि वह जीनियस है और मैंने सहज ही इस बात पर विश्वास कर लिया था। उससे पहले मेरा जीनियस से प्रत्यक्ष परिचय कभी नहीं हुआ था। इतना मैं जानता था कि अब वह पहला ज़माना नहीं है जब एक सदी में कोई एकाध ही जीनियस हुआ करता था। आज के ज़माने को जीनियस पैदा करने की नज़र से कमाल हासिल है। रोज़ कहीं न कहीं किसी न किसी जीनियस की चर्चा सुनने को मिल जाती है। मगर जीनियस की चर्चा सुनना और बात है, और एक जीनियस को अपने सामने देखना बिल्कुल दूसरी बात है। तो मैं उसे गौर से देख रहा था। उसका कद छोटा था और रंग सांवला था। उसके भूरे बाल उलझकर माथे पर आ गए थे। चेहरे पर हल्की-हल्की झुर्रियां थीं हालांकि उसकी उम्र सत्ताईस-अट्ठाईस साल से ज़्यादा नहीं थी। ओठों पर एक स्थायी मुस्कराहट दिखाई देती थी, फिर भी चेहरे का भाव गंभीर था। वह सिगरेट का कश खींचकर नीचे का ओठ ज़रा आगे को फैला देता था जिससे धुआं बजाय सीधा जाने के ऊपर की तरफ उठ जाता था। उसकी

आंखें निर्विकार भाव से सामने देख रही थीं। हाथ मशीनी ढंग से काफी की प्याली को ओठों तक ले जाते थे, हल्का-सा घूंट अन्दर जाता था और प्याली वापस सॉसर में पहुंच जाती थी।

"हूं!" कई क्षणों के बाद उसके मुंह से यह स्वर निकला। मुझे लगा कि उसकी 'हूं' साधारण आदमी की 'हूं' से बहुत भिन्न है।

"मेरे मित्र, आपकी बहुत प्रशंसा कर रहे थे", मैंने वक्त की ज़रूरत समझते हुए बात आरम्भ की। जीनियस के माथे के बल गहरे हो गए और उसके होंठों पर मुस्कराहट ज़रा और फैल गई।

"मैंने इनसे कहा था कि चलिए आपका परिचय करा दूँ", मेरे साथी ने कहा। साथ ही उसकी आंखें झपकीं और उसके दो-एक दांत बाहर दिखाई दे गए। मुझे एक क्षण के लिए संदेह हुआ कि कहीं यह संकेत स्वयं उसीके जीनियस होने का परिचायक तो नहीं परन्तु दूसरे ही क्षण उसकी सधी हुई मुद्रा देखकर मेरा संदेह जाता रहा। जीनियस एक पल आंखें मूंदे रहा। फिर उसने इस तरह विस्मय के साथ आंखें खोलीं जैसे वह यह निश्चय न कर पा रहा हो कि अपने आसपास बैठे हुए लोगों के साथ उसका क्या संबंध हो सकता है। उसके फैले हुए होंठ ज़रा सिकुड़ गए। उसने सिगरेट का एक कश खींचा और तम्बाकू का धुआं सरसराता हुआ ऊपर को उठने लगा, तो उसने कहा, "देखिए, ये सिर्फ आपको बना रहे हैं। मैं जीनियस-वीनियस कुछ नहीं, सिर्फ एक साधारण आदमी हूं।"

मैंने अपने साथी की तरफ देखा कि शायद उसके किसी संकेत से पता चले कि मुझे अब क्या कहना चाहिए। मगर वह दम साधे पत्थर के बुत की तरह गंभीर बैठा था। मैंने फिर जीनियस की तरफ देखा। वह भी अपनी जगह पर उसी तरह निश्चल था। बुशशर्ट के खुले होने से उसकी बालों से भरी हुई छाती का काफी भाग बाहर दिखाई दे रहा था।

वह कहवाखाने का काफी अंधेरा कोना था। आसपास धुआं जमा हो रहा था। दूर ज़ोर-ज़ोर के कहकहे लग रहे थे और हाथों में थालियां लिए छायाएं इधर-उधर घूम रही थीं।

"मैं आज तक नहीं समझ सका कि कुछ लोग जीनियस क्यों माने जाते हैं ?" जीनियस ने फिर कहना आरंभ किया, "मैंने बड़े-बड़े जीनियसों के विषय में पढ़ा है और जिन्हें लोग जीनियस समझते हैं, उनकी रचनाएं भी पढ़ी हैं। उनमें कुछ नाम हैं—शेक्सपियर, टॉल्स्टाय, गोर्की और टैगोर। मैं इन सबको हेच समझता हूं।"

मैं अब और भी ध्यान से उसे देखने लगा। उसके माथे के ठीक बीच में एक फूली हुई नाड़ी थी जिसकी धड़कन दूर से ही नज़र आती थी। उसकी गलौठी बाहर को निकली हुई थी। बाईं आंख के नीचे हल्का-सा फफोला था। मैं उसके नक्श अच्छी तरह ज़हन में बिठा लेना चाहता था। डर था कि हो सकता है फिर ज़िंदगी-भर किसी जीनियस से मिलने का सौभाग्य प्राप्त न हो।

"शेक्सपियर सिर्फ एक बार्ड था", दो कश खींचकर उसने फिर कहना आरंभ किया, "और अगर मार्लोवाली कहानी सच है, तो इस बात में ही संदेह है कि शेक्सपियर शेक्सपियर था। टॉल्स्टाय, गोर्की और चेखव जैसे लेखकों को मैं अच्छे कॉपीइस्ट समझता हूं—केवल कॉपीइस्ट, और कुछ नहीं। जो जैसा अपने आसपास देखा उसका हूबहू चित्रण करते गए। इसके लिए विशेष प्रतिभा की आवश्यकता नहीं। टैगोर में हां, थोड़ी कविता ज़रूर थी।"

वह खुलकर मुस्कराया। मेरे लिए उस मुस्कराहट की थाह पाना बहुत कठिन था। पास ही कहीं दो-एक प्यालियां गिरकर टूट गईं। एक कबूतर पंख फड़फड़ाता हुआ कहवाखाने के अन्दर चला आया और कुछ लोग मिलकर उसे बाहर निकालने की कोशिश करने लगे। जीनियस की

आंखें भी कबूतर की तरफ मुड़ गईं और वह कुछ देर के लिए हमारे अस्तित्व को बिलकुल भूल गया। जब उसने कबूतर की तरफ से आंखें हटाईं तो उसे जैसे नये सिरे से हमारी मौजूदगी का अहसास हुआ।

"मैं एक निहायत ही अदना इन्सान हूं," उसने हमारे कन्धों से ऊपर दीवार की तरह देखते हुए कहा, "लेकिन यह मैं जरूर जानता हूं कि जीनियस कहते किसे हैं—माफ कीजिए, कहते नहीं, जीनियस कहना किसे चाहिए।" उसने प्याली रख दी और शब्दों के साथ-साथ उसकी उंगलियां हवा में खाके बनाने लगीं। "आप जानते हैं—या शायद नहीं जानते—कि जीनियस एक व्यक्ति नहीं होता। वह एक फिनोमेना होता है, एक परिस्थिति जिसे केवल महसूस किया जा सकता है। उसका अपना एक रेडिएशन, एक प्रकाश होता है। उस रेडिएशन का अनुमान उसके चेहरे की लकीरों से, उसके हाव-भाव से, या उसकी आंखों से नहीं होता। वह एक फिनोमेना है जिसके अन्दर एक अपनी हलचल होती है परन्तु जो हलचल उसकी आंखों में देखने से दिखाई नहीं देती। वह स्वयं भी अपने सम्बन्ध में नहीं जानता, परन्तु जिस व्यक्ति का उसके साथ सम्पर्क हो, उस व्यक्ति को उसे पहचानने में कठिनाई नहीं होती। एक जीनियस को जीनियस के रूप में जानने के लिए उसकी लिखी हुई पुस्तकों या उसके बनाए हुए चित्रों को सामने रखने की आवश्यकता नहीं होती। जीनियस एक फिनोमेना है, जो अपना प्रमाण स्वयं होता है। उसके अस्तित्व में ही एक चीज़ होती है जो अपने-आप बाहर महसूस हो जाती है। मैं यह इसलिए कह सकता हूं कि मैं एक ऐसे फिनोमेना से परिचित हूं। मेरा-उसका हर रोज़ का साथ है, और मैं अपने को उसके सामने बहुत तुच्छ, बहुत हीन अनुभव करता हूं।"

उसकी मुस्कराहट फिर लंबी हो गई थी। उसने नया सिगरेट सुलगाकर एक और बड़ा-सा कश खींच लिया। कॉफी की प्याली उठाकर

उसने एक घूंट में ही समाप्त कर दी। मैं अवाक् भाव से उसके माथे की उभरी हुई नाड़ी को देखता रहा।

"मुझे उसके साथ के कारण एक आत्मिक प्रसन्नता प्राप्त होती है", वह फिर बोला, "मुझे उसके सम्पर्क से अपना आप भी जीवन की साधारण सतह से उठता हुआ महसूस होता है। उसमें सचमुच वह चीज़ है जो दूसरे को ऊंचा उठा सकती है। मैं तब उसका रेडिएशन देख सकता हूं। उसके अंदर की हलचल महसूस कर सकता हूं। जिस तरह अभी-अभी वह कबूतर पंख फड़फड़ा रहा था, उसी तरह उसकी आत्मा में हर समय एक फड़-फड़ाहट—एक छटपटाहट—भरी रहती है। उस छटपटाहट में ऐसा कुछ है जो यदि बाहर आ जाए, तो चाहे ज़िंदगी का नक्शा बदल दे। मगर उसे उस चीज़ को बाहर लाने का मोह नहीं है। उसकी दृष्टि में अपने को बाहर व्यक्त करने की चेष्टा करना व्यवसाय-बुद्धि है, बनियापन है। और इसीलिए मैं उसका इतना सम्मान करता हूं। मैं उससे बहुत छोटा हूं, बहुत-बहुत छोटा हूं, परंतु मुझे गर्व है कि मुझे उससे स्नेह मिलता है, सहारा मिलता है। मैं भी उसके लिए अपने प्राणों का बलिदान कर सकता हूँ। मैंने जीवन में बहुत भूख देखी है—हर तरह की भूख—और अपनी भूख से प्रायः मैं व्याकुल हो जाता रहा हूं। परन्तु जब उसे देखता हूं तो मैं शर्मिन्दा हो जाता हूं, भूख उसने भी देखी है, और मुझसे कहीं ज़्यादा भूख देखी है—क्योंकि उसकी भूख एक व्यक्ति की भूख नहीं, सारी मानवता की भूख है, परन्तु मैंने कभी उसे ज़रा भी विचलित या व्याकुल होते नहीं देखा। वह कठिन से कठिन अवसर पर भी मुस्कराता रहता है। मेरा सिर उसके सामने झुक जाता है। मैं जीवन के हर मसले में उससे राय लेता हूं, और हमेशा उसकी बताई हुई राह पर चलने की चेष्टा करता हूं। कई बार तो उसके सामने मुझे महसूस होता है कि मैं तो हूं ही नहीं, बस वही वह है, क्योंकि उसके रेडिएशन के सामने मेरा व्यक्तित्व

बहुत फीका पड़ जाता है। परन्तु मैं अपनी सीमाएं जानता हूं। मैं लाख चेष्टा करूं फिर भी उसकी बराबरी तक नहीं उठ सकता।

उसके दांत आपस में मिल गए और चेहरा काफी सख्त हो गया। चेहरे की लकीरें पहले से भी गहरी हो गईं। फिर उसने दोनों हाथों का उंगलियां आपस में उलझाईं और एक बार उन्हें चटका लिया। धीरे-धीरे उसके चेहरे का तनाव फिर मुस्कराहट में बदलने लगा।

"खैर!" उसने उठने की तैयारी में अपना हाथ आगे बढा दिया। मैं अब आपसे इजाज़त लूंगा। मैं भूल गया था कि मुझे एक जगह जाना है..."

"मगर..." मैं इतना ही कह पाया। मैं तब तक उसी अवाक् भाव से उसे देख रहा था। उसका इस तरह एकदम उठकर चल देना मुझे ठीक नहीं लग रहा था। अभी तो उसने बात आरम्भ ही की थी।

"आप शायद सोच रहे हैं कि वह व्यक्ति कौन है जिसकी मैं बात कर रहा था...." वह उसी तरह हाथ बढ़ाए हुए बोला, "मुझे खेद है कि मैं आपका या किसीका भी उससे परिचय नहीं करा सकता। मैंने आपसे कहा था न कि वह एक व्यक्ति नहीं, एक फिनोमेना है। अपने से बाहर वह मुझे भी दिखाई नहीं देता। मैं केवल अपने अन्दर उसका रेडिएशन ही महसूस कर सकता; ।"

और वह हाथ मिलाकर उठ खड़ा हुआ। चलने से पहले उसकी आंखों में क्षण-भर के लिए एक चमक आ गई और उसने कहा, "वह मेरा इनरसेल्फ है।"

और क्षण-भर स्थिर दृष्टि से हमें देखकर वह दरवाज़े की तरफ चल दिया।

एक और ज़िंदगी

…और उस एक क्षण के लिए प्रकाश के हृदय की धड़कन जैसे रुकी रही। कितना विचित्र था वह क्षण—आकाश से टूटकर गिरे हुए नक्षत्र जैसा! कोहरे के वक्ष में एक लकीर-सी खींचकर वह क्षण सहसा व्यतीत हो गया।

कोहरे में से गुज़रकर जाती हुई आकृतियों को उसने एक बार फिर ध्यान से देखा। क्या यह सम्भव था कि व्यक्ति की आंखें इस हद तक उसे धोखा दें? तो जो कुछ वह देख रहा था, वह यथार्थ ही नहीं था?

कुछ ही क्षण पहले जब वह कमरे से निकलकर बालकनी पर आया था, तो क्या उसने कल्पना में भी यह सोचा था कि आकाश के ओर-छोर तक फैले हुए कोहरे में, गहरे पानी की निचली सतह पर तैरती हुई मछलियों जैसी जो आकृतियां नज़र आ रही हैं, उनमें कहीं वे दो आकृतियां भी होंगी? मंदिरवाली सड़क से आते हुए दो कुहरीले रंगों पर जब उसकी नज़र पड़ी थी, तब भी क्या उसके मन में कहीं ऐसा अनुमान जागा था? फिर भी न जाने क्यों उसे लग रहा था जैसे बहुत समय से, बल्कि कई दिनों से, वह उनके वहां से गुज़रने की प्रतीक्षा कर रहा हो, जैसे कि उन्हें देखने के लिए ही वह कमरे से निकलकर बाल-

कनी पर आया हो और उन्हींको ढूंढ़ती हुई उसकी आंखें मंदिरवाली सड़क की तरफ मुड़ी हों।—यहां तक कि उस धानी आंचल और नीली नेकर के रंग भी जैसे उसके पहचाने हुए हों और कोहरे के विस्तार में वह उन दो रंगों को ही खोज रहा हो। वैसे उन आकृतियों के बालकनी के नीचे पहुंचने तक उसने उन्हें पहचाना नहीं था। परन्तु एक क्षण में सहसा वे आकृतियां इस तरह उसके सामने स्पष्ट हो उठी थीं जैसे जड़ता के क्षण मे अवचेतन की गहराई में डूबा हुआ कोई विचार एकाएक चेतना की सतह पर कौंध गया हो।

नीली नेकरवाली आकृति घूमकर पीछे की तरफ देख रही थी। क्या उसे भी कोहरे में किसीकी खोज थी? और किसकी? प्रकाश का मन हुआ कि उसे आवाज़ दे दे, मगर उसके गले से शब्द नहीं निकले। कोहरे का समुद्र अपनी गंभीरता में खामोश था मगर उसे उसकी अपनी खामोशी एक ऐसे तूफान की तरह थी जो हवा न मिलने से अपने अंदर ही घुमड़कर रह गया हो। नहीं तो क्या वह इतना ही असमर्थ था कि उसके गले से एक शब्द भी न निकल सके?

वह बालकनी से हटकर कमरे में आ गया। वहां आते ही अपने अस्त-व्यस्त सामान पर नज़र पड़ी, तो शरीर में निराशा की एक सिहरन दौड़ गई। क्या यही वह ज़िंदगी थी जिसके लिए उसने···? परन्तु उसे लगा कि उसके पास कुछ भी सोचने के लिए समय नहीं है। उसने जल्दी-जल्दी कुछ चीज़ों को उठाया और रख दिया जैसे कि कोई चीज़ ढूंढ़ रहा हो जो उसे मिल न रही हो। अचानक खूंटी पर लटकती हुई पतलून पर नज़र पड़ी, तो उसने पाजामा उतारकर जल्दी से उसे पहन लिया। फिर पल-भर खोया-सा खड़ा रहा। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या चाहता है। क्या वह उन दोनों के पीछे जाना चाहता था? या बालकनी पर खड़ा होकर पहले की तरह उन्हें देखते रहना ही चाहता था?

अचानक उसका हाथ मेज़ पर रखे हुए ताले पर पड़ गया, तो उसने उसे उठा लिया। जल्दी से दरवाज़ा बन्द करके वह ज़ीने से उतरने लगा। ज़ीने पैर आकर पता चला कि जूता नहीं पहना। वह पल-भर के लिए ठिठककर खड़ा रहा मगर लौटकर नहीं गया। नीचे सड़क पर पहुंचते ही पांव कीचड़ में लथपथ हो गए। दूर देखा—वे दोनों आकृतियां घोड़ों के अड्डे के पास पहुंच चुकी थीं। वह जल्दी-जल्दी चलने लगा। पास से गुज़रते हुए एक घोड़ेवाले से उसने कहा कि वह आगे जाकर नीली नेकरवाले बच्चे को रोक ले—उससे कहे कि कोई उससे मिलने के लिए पीछे आ रहा है। घोड़ेवाला घोड़ा दौड़ाता हुआ गया मगर उन दोनों के पास न रुककर उनसे आगे निकल गया। वहां जाकर उसने न जाने किसे उसका संदेश दे दिया।

जल्दी-जल्दी चलते हुए भी प्रकाश को लग रहा था जैसे वह बहुत आहिस्ता चल रहा हो, जैसे उसके घुटने जकड़ गए हों और रास्ता बहुत-बहुत लम्बा हो गया हो। उसका मन इस आशंका से बेचैन था कि उसके पास पहुंचने तक वे लोग घोड़ों पर सवार होकर वहां से चल न दें और जिस दूरी को वह नापना चाहता था, वह ज्यों की त्यों न बनी रहे। मगर ज्यों-ज्यों फासला कम हो रहा था, उसका कम होना भी उसे अखर रहा था। क्या वह जान-बूझकर अपने को एक ऐसी स्थिति की ओर नहीं ले जा रहा था जिससे उसे अपने को बचाना चाहिए था ?

उन लोगों ने घोड़े नहीं लिए थे। जब वह उनसे तीन-चार गज दूर रह गया, तो सहसा उसके कदम रुक गए। तो क्या सचमुच अब उसे उस स्थिति का सामना करना ही था ?

"पाशी !" इससे पहले कि वह निश्चय कर पाता, अनायास उसके मुंह से निकल गया।

बच्चे की बड़ी-बड़ी आंखें अचानक उसकी तरफ घूम गईं—साथ ही

उसकी मां की आंखें भी। कोहरे में अचानक कई-कई बिजलियां कौंध गईं। प्रकाश दो-एक कदम और आगे बढ़ गया। बच्चा विस्मित आंखों से उसकी तरफ देखता हुआ अपनी मां के साथ सट गया।

"पलाश, इधर आ मेरे पास," प्रकाश ने हाथ से चुटकी बजाते हुए कहा, जैसे कि यह हर रोज़ की एक साधारण घटना हो और बच्चा अभी कुछ मिनट पहले ही उसके पास से अपनी मां के पास गया हो।

बच्चे ने मां की तरफ देखा। वह अपनी आंखें हटाकर दूसरी तरफ देख रही थी। बच्चा और भी उसके साथ सट गया और उसकी आंखें विस्मय के साथ-साथ एक शरारत से चमक उठीं।

प्रकाश को वहां खड़े-खड़े उलझन हो रही थी। उसे लग रहा था कि खुद चलकर उस दूरी को नापने के सिवा उसके पास कोई चारा नहीं है। वह लम्बे-लम्बे डग भरकर बच्चे के पास पहुंचा और उसे उसने बांहों से उठा लिया। बच्चे ने एक बार किलकारकर उसके हाथों से छूटने की चेष्टा की, परन्तु दूसरे ही क्षरण अपनी छोटी-छोटी बांहें उसके गले में डालकर वह उससे लिपट गया। प्रकाश उसे लिए हुए थोड़ा एक तरफ को हट आया।

"तूने पापा को पहचाना नहीं था क्या ?"

"पैताना ता", बच्चा बांहें उसके गले में डालकर झूलने लगा।

"तो तू झट से पापा के पास आया क्यों नहीं ?"

"नहीं आया", कहकर बच्चे ने उसे चूम लिया।

"तू आज ही यहां आया है ?"

"नहीं, तल आया ता।"

"रहेगा या आज ही लौट जाएगा ?"

"अबी तीन-चाल दिन लहूंदा।"

"तो पापा के पास मिलने आएगा न ?"

"आऊंदा।"

प्रकाश ने एक बार उसे अच्छी तरह अपने साथ सटाकर चूम लिया, तो बच्चा चिल्लाकर उसके माथे, आंखों और गालों को जगह-जगह चूमने लगा।

"कैसा बच्चा है !" पास खड़े एक कश्मीरी मजदूर ने सिर हिलाते हुए कहा।

"तुम तहां लहते हो ?" बच्चा बांहें उसकी गरदन में डाले हुए जैसे उसे अच्छी तरह देखने के लिए थोड़ा पीछे को हट गया।

"वहां !" प्रकाश ने दूर अपने कमरे की बालकनी की तरफ इशारा किया। "तू कब तक वहां आएगा ?"

"अबी ऊपल जाकल दूद पिऊंदा, उछके बाद तुमाले पाछ आऊंदा।" बच्चे ने एक बार अपनी मां की तरफ देखा और उसकी बांहों से निकलने के लिए मचलने लगा।

"मैं वहां बालकनी में कुरसी डालकर बैठा रहूंगा और तेरा इंतजार करूंगा", बच्चा बांहों से उतरकर अपनी मां की तरफ भाग गया, तो प्रकाश ने पीछे से कहा। क्षण-भर के लिए उसकी आंखें बच्चे की मां से मिल गई, परन्तु दूसरे ही क्षण दोनों दूसरी-दूसरी तरफ देखने लगे। बच्चा जाकर मां की टांगों से लिपट गया, तो वह कोहरे के पार देवदारों की धुंधली रेखाओं को देखती हुई उससे बोली, "तुझे दूध पीकर आज खिलनमर्ग नहीं चलना है क्या ?"

"नहीं", बच्चे ने उसकी टांगों के सहारे उछलते हुए सपाट जवाब दिया, "मैं दूद पीतल पापा ते पाछ जाऊंदा।"

तीन दिन तीन रातों से आकाश घिरा हुआ था। कोहरा धीरे-धीरे इतना घना हो गया था कि बालकनी से आगे कोई रूप, कोई रंग नज़र नहीं

आता था—आकाश की पारदर्शिता पर जैसे गाढ़ा सफेदा पोत दिया गया था। ज्यों-ज्यों समय बीत रहा था, कोहरा और घना होता जा रहा था। कुरसी पर बैठे हुए किसी-किसी क्षण महसूस होने लगता था जैसे वह बालकनी पहाड़ियों से घिरे हुए खुले विस्तार में न होकर अन्तरिक्ष के किसी रहस्यमय प्रदेश में बनी हो—नीचे और ऊपर केवल आकाश ही आकाश हो, जिसके अतल में बालकनी की सत्ता एक अपने-आपमें पूर्ण और स्वतन्त्र लोक की तरह हो···।

उसकी आंखें इस तरह एकटक सामने की तरफ देख रही थीं—जैसे आकाश में और कोहरे में उसे कोई अर्थ ढूंढ़ना हो—अपनी बालकनी के वहां होने के रहस्य को जानना हो।

हवा से कोहरे के बादल कई-कई रूप लेकर इधर से उधर भटक रहे थे—अपनी गहराई में फैलते और सिमटते हुए वे अपनी थाह नहीं पा रहे थे। बीच में कहीं-कहीं देवदारों की फुनगियां एक हरी लकीर की तरह निकली हुई थीं—कोहरे के आकाश पर लिखी गई एक अस्तव्यस्त लिपि जैसी। देखते-देखते वह लकीर भी गुम हो जाती थी—कोहरे का हाथ उसे रहने देना नहीं चाहता था। लकीर को मिटते देखकर स्नायुओं में एक तनाव-सा आ रहा था—जैसे किसी भी तरह वह उस लकीर को मिटने से बचा लेना चाहता हो। परन्तु जब एक बार लकीर मिटकर बाहर नहीं निकली, तो उसने सिर पीछे को डाल लिया और खुद भी कोहरे में कोहरा होकर पड़ रहा···।

अतीत के कोहरे में कहीं वह एक दिन भी था जो चार बरस बीत जाने पर भी आज तक बीत नहीं सका था···।

बच्चे की पहली वर्षगांठ थी उस दिन—वही उनके जीवन की सब से बड़ी गांठ बन गई थी···।

विवाह के कुछ महीने बाद से ही पति-पत्नी अलग-अलल रहने लगे थे। विवाह के साथ जो सूत्र जुड़ना चाहिए था, वह जुड़ नहीं सका था। दोनों अलग-अलग जगह काम करते थे और अपना-अपना स्वतन्त्र ताना-बाना बुनकर जी रहे थे। लोकाचार के नाते साल-छः महीने में कभी एक बार मिल लिया करते थे। वह लोकाचार ही इस बच्चे को संसार में ले आया था...।

बीना समझती थी कि इस तरह जान-बूझकर उसे फंसा दिया गया है। प्रकाश सोचता था कि अनजाने में ही उससे एक अपराध हो गया है। परन्तु जन्म के पांचवें या छठे रोज़ बच्चे की हालत सहसा बहुत खराब हो गई, तो वह अपने कमरे में अकेला बैठा हवा में बच्चे के आकर को देखता हुआ कहता रहा था, "देख, तुझे जीना है। तू इस तरह नहीं जा सकता। सुन रहा है? तुझे जीना है। हर हालत में जीना है। मैं तुझे जाने नहीं दूंगा। समझा?"

साल-भर से बच्चा मां के पास ही रह रहा था। बीच में बच्चे की दादी छः-सात महीने उसके पास रह आई थी।

पहली वर्षगांठ पर बीना ने लिखा था कि वह बच्चे को लेकर अपने पिता के यहां लखनऊ जा रही है। वहीं पर बच्चे के जन्मदिन की पार्टी करेगी।

प्रकाश ने उसे तार दिया था कि वह भी उस दिन लखनऊ आएगा। अपने एक मित्र के यहां हज़रतगंज में ठहरेगा। अच्छा होगा कि पार्टी वहीं पर की जाए। लखनऊ के कुछ मित्रों को भी उसने सूचित कर दिया था कि उसके बच्चे की वर्षगांठ के अवसर पर वे उसके साथ चाय पीने के लिए आएं।

उसने सोचा था कि बीना उसे स्टेशन पर मिल जाएगी, परन्तु वह नहीं मिली। हज़रतगंज पहुंचकर नहा-धो चुकने के बाद उसने बीना के

पास सन्देश भेजा कि वह वहां पहुंच गया है, कुछ लोग साढ़े चार-पांच बजे चाय पर आएंगे, इसलिए वह उस समय तक बच्चे को लेकर अवश्य वहां पहुंच जाए। परन्तु पांच बजे, छः बजे, सात बज गए, बीना बच्चे को लेकर नहीं आई। दूसरी बार सन्देश भेजने पर पता चला कि वहां उन लोगों की पार्टी चल रही है। बीना ने कहला भेजा कि बच्चा आठ बजे तक खाली नहीं होगा, इसलिए वह उस समय उसे लेकर नहीं आ सकती। प्रकाश ने अपने मित्रों को चाय पिलाकर विदा कर दिया। बच्चे के लिए खरीदे हुए उपहार बीना के पिता के यहां भेज दिए। साथ में यह सन्देश भी भेजा कि बच्चा जब भी खाली हो, उसे थोड़ी देर के लिए उसके पास भेज दिया जाए।

परन्तु आठ के बाद नौ बजे, दस बजे,. बारह बज गए पर बीना न तो बच्चे को लेकर ही आई और न ही उसने उसे किसी और के साथ भेजा।

प्रकाश रात-भर सोया नहीं। उसके दिमाग को जैसे कोई छैनी से छीलता रहा।

सुबह उसने फिर बीना के पास सन्देश भेजा। इस बार बीना बच्चे को लेकर आ गई। उसने बताया कि रात को पार्टी देर तक चलती रही, इसलिए उसका आना सम्भव नहीं था—अगर वास्तव में उसे बच्चे से प्यार था, तो उसका कर्तव्य था कि वह अपने उपहार लेकर खुद उनके यहां पार्टी में आ जाता...।

उस दिन सुबह से आरम्भ हुई बात आधी रात तक चलती रही। प्रकाश बार-बार कहता रहा, "बीना, मैं इस बच्चे का पिता हूं। पिता होने के नाते मुझे यह अधिकार तो है ही कि मैं बच्चे को अपने पास बुला सकूं।"

परन्तु बीना का उत्तर था, "आपके पास पिता का दिल होता, तो

क्या आप पार्टी में न आते ? आप मुझसे पूछें, तो मैं तो कहूंगी कि यह एक आकस्मिक घटना ही है कि आप इसके पिता हैं।"

"बीना !" वह फटी-फटी आंखों से उसके चेहरे की तरफ देखता रह गया। "तुम बताओ, तुम चाहती क्या हो ?"

"कुछ भी नहीं। मैं आपसे क्या चाहूंगी ?"

"तुमने सोचा है कि इस बच्चे के भविष्य का क्या होगा ?"

"जब हम अपने ही भविष्य के बारे में नहीं सोच सकते, तो इसके भविष्य के बारे में क्या सोचेंगे ?"

"क्या तुम यह पसन्द करोगी कि बच्चे को मुझे सौंप दो और खुद स्वतन्त्र हो जाओ ?"

"बच्चे को आपको सौंप दूं ?" बीना के स्वर में वितृष्णा गहरी हो गई। "इतनी मूर्ख मैं नहीं हूं।"

"तो क्या तुम यही चाहती हो कि इसका निर्णय करने के लिए अदालत में जाया जाए ?"

"आप अदालत में जाने चाहें, तो मुझे उसमें भी एतराज़ नहीं है। जरूरत होने पर मैं सुप्रीमकोर्ट तक लड़ूंगी। आपका बच्चे पर कोई अधिकार नहीं है।"

"बच्चे को पिता से ज्यादा मां की ज़रूरत होती है," कई दिन··· कई सप्ताह वह मन ही मन संघर्ष करता रहा। "जहां उसे दोनों न मिल सकते हों, वहां उसे मां तो मिलनी चाहिए ही। अच्छा है तुम बच्चे की बात भूल जाओ और नये सिरे से अपनी जिन्दगी बनाने की कोशिश करो।"

"मगर···।"

"फिज़ूल की हुज्जत में कुछ नहीं रखा है। बच्चे-अच्चे तो होते ही रहते हैं। तुम सम्बन्ध विच्छेद करके फिर से ब्याह कर लो, तो घर में

बच्चे ही बच्चे हो जाएंगे। समझ लेना कि इस एक बच्चे के साथ कोई दुर्घटना हो गई थी…।"

सोचने-सोचने में दिन, सप्ताह और महीने निकलते गए। क्या सचमुच इन्सान पहले की ज़िन्दगी को मिटाकर नये सिरे से ज़िंदगी आरंभ कर सकता है ? क्या सचमुच ज़िन्दगी के कुछ वर्षों को एक दुःस्वप्न की तरह भूलने का प्रयत्न किया जा सकता है ? बहुत-से इन्सान हैं जिनकी ज़िंदगी कहीं न कहीं किसी न किसी दोराहे से गलत दिशा की ओर भटक जाती है। क्या यही उचित नहीं कि इन्सान उस रास्ते को बदलकर अपनी गलती सुधार ले ? आखिर इन्सान को जीने के लिए एक ही जीवन तो मिलता है—वही प्रयोग के लिए और वही जीने के लिए। तो क्यों इन्सान एक प्रयोग की असफलता को जीवन की असफलता मान ले ?

कोर्ट में कागज़ पर हस्ताक्षर करते समय छत के पंखे से टकराकर एक चिड़िया का बच्चा नीचे आ गिरा।

"हाय हाय, चिड़िया मर गई," किसीने कहा।

"मरी नहीं, अभी ज़िन्दा है," कोई और बोला।

"चिड़िया नहीं है, चिड़िया का बच्चा है", किसी तीसरे ने कहा।

"नही चिड़िया है।"

"नहीं, चिड़िया का बच्चा है।"

"इसे उठाकर बाहर हवा में छोड़ दो।"

"नहीं, यहीं पड़ा रहने दो। बाहर इसे कोई बिल्ली खा जाएगी।"

"यह यहां आया किस तरह ?"

"जाने किस तरह ? रोशनदान के रास्ते आ गया होगा।"

"बेचारा कैसे तड़प रहा है !"

"शुक्र है पंखे ने इसे काट ही नहीं दिया।"

"काट दिया होता, तो बल्कि अच्छा था। अब इस तरह बेचारा क्या जिएगा ?"

तब तक पति-पत्नी दोनों ने कागज़ पर हस्ताक्षर कर दिए थे। बच्चा उस समय कोर्ट के अहाते में कौवों के पीछे भागता हुआ किलकारियां मार रहा था। वहां धूल उड़ रही थी और चारों तरफ मटियाली-सी धूप फैली थी...।

फिर वही दिन, सप्ताह और महीने...!

अढ़ाई साल गुज़र जाने पर भी प्रकाश फिर से ज़िन्दगी आरम्भ करने का निश्चय नहीं कर पाया था। उस अरसे में बच्चा तीन बार उससे मिलने के लिए आया था। वह नौकर के साथ आता था और दिन-भर रहकर अंधेरा होने पर लौट जाता था। पहली बार वह उससे शरमाता रहा था, मगर बाद में उससे हिल-मिल गया था। प्रकाश बच्चे को लेकर घूमने जाता था, उसे आइसक्रीम खिलाता था, खिलौने ले देता था। बच्चा जाने के समय हठ करता था, "अबी नहीं जाऊंदा। दूद पीतल जाऊंदा। थाना थातल जाऊंदा।"

जब बच्चा इस तरह की बात कहता था, तो उसके अन्दर सहसा कोई चीज़ सुलग उठती थी। उसका मन होता था कि, नौकर को झिड़ककर वापस भेज दे और बच्चे को हमेशा-हमेशा के लिए अपने पास रख ले। जब नौकर बच्चे से कहता था, "बाबा, चलो अब देर हो रही है," तो प्रकाश का शरीर एक हताश आवेश से कांपने लगता और बहुत कठिनता से वह अपने को संभाल पाता। आखिरी बार बच्चा रात के नौ बजे तक रुका रह गया, तो एक अपरिचित व्यक्ति उसे लेने के लिए चला आया था।

बच्चा उस समय उसकी गोदी में बैठा खाना खा रहा था।

"देखिए, अब बच्चे को भेज दीजिए, इसे बहुत देर हो गई है" अजनबी ने आकर कहा।

"आप देख रहे हैं बच्चा खाना खा रहा है," उसका मन हुआ कि मुक्का मारकर उस आदमी के दांत तोड़ दे।

"हां, हां, आप खाना खिला दीजिए," अजनबी ने उदारता के साथ कहा, "मैं नीचे इन्तज़ार कर रहा हूं।"

गुस्से के मारे प्रकाश के हाथ इस तरह कांपने लगे कि उसके लिए बच्चे को खाना खिलाना असम्भव हो गया।

जब नौकर बच्चे को लेकर चला गया, तो उसने देखा कि बच्चे की टोपी वहीं पर रह गई है। वह टोपी लिए हुए भागकर नीचे पहुंचा, तो देखा कि नौकर और अजनबी के अलावा बच्चे के साथ कोई और भी है—उसकी मां। वे लोग चालीस-पचास गज़ आगे पहुंच गए थे। उसने नौकर को आवाज़ दी, तो चारों ने मुड़कर एकसाथ उसकी तरफ देखा। नौकर टोपी लेने के लिए लौट आया और शेष तीनों आगे चलते रहे।

उस रात वह एक दोस्त की छाती पर सिर रखकर देर तक रोता रहा।

नये सिरे से फिर वही सवाल मन में उठने लगा। क्यों वह अपने को इस अतीत से पूरी तरह मुक्त नहीं कर लेता? यदि बसा हुआ घर-बार हो, तो अपने आसपास बच्चों की चहल-पहल में वह इस दुःख को भूल नहीं जाएगा? उसने अपने को बच्चे से इसीलिए तो अलग किया था कि अपने जीवन को एक नया मोड़ दे सके—फिर वह इस तरह अकेली ज़िन्दगी की यन्त्रणा किसलिए सह रहा था?

परन्तु नये सिरे से जीवन आरम्भ करने की कल्पना में सदा एक

आशंका मिली रहती थी। वह उस आशंका से जितना ही लड़ता था, वह उतनी ही और प्रबल हो उठती थी। जब एक प्रयोग सफल नहीं हुआ, तो यह कैसे कहा जा सकता था कि दूसरा प्रयोग सफल होगा ही ?

वह पहले की भूल को दोहराना नहीं चाहता था, इसलिए उसकी आशंका ने उसे बहुत सतर्क कर दिया था। वह जिस किसी लड़की को अपनी भावी पत्नी के रूप में देखता, उसीके चेहरे में उसे अपने पहले जीवन की छाया नज़र आने लगती। हालांकि वह स्पष्ट रूप से इस विषय में कुछ भी सोच नहीं पाता था, फिर भी उसे लगता था कि वह एक ऐसी ही लड़की के साथ जीवन बिता सकता है, जो हर दृष्टि से बीना के विपरीत हो। बीना में बहुत अहं था, वह उसके बराबर पढ़ी-लिखी थी, उससे ज़्यादा कमाती थी। उसे अपनी स्वतन्त्रता का बहुत मान था और वह समझती थी कि किसी भी परिस्थिति का वह अकेली रहकर मुकाविला कर सकती है। शारीरिक दृष्टि से भी बीना काफी लम्बी-ऊंची थी। और उसपर भारी पड़ती थी। बातचीत भी वह खुले मरदाना ढंग से करती थी। वह अब एक ऐसी लड़की चाहता था जो हर तरह से उसपर निर्भर करे, जिसकी कमज़ोरियां एक पुरुष के आश्रय की अपेक्षा रखती हों।

और कुछ ऐसी ही लड़की थी निर्मला—उसके एक घनिष्ठ मित्र कृष्ण जुनेजा की बहन। उसने दो-एक बार उस लड़की को देखा था। बहुत सीधी-सादी मासूम-सी लड़की थी। बात करते हुए उसकी आंखें नीचे को झुक जाती थीं। साधारण पढ़ी-लिखी थी और बहुत साधारण ढंग से ही रहती थी। उसे देखकर अनायास मन में सहानुभूति उमड़ आती थी। छब्बीस-सत्ताईस बरस की होकर भी देखने में वह अठारह-उन्नीस से ज़्यादा की नहीं लगती थी। वह जुनेजा के घर की कठिनाइयों को जानता था। उन कठिनाइयों के कारण ही शायद इतनी उम्र तक

उस लड़की का विवाह नहीं हो सका था। उसके साथ निर्मला के विवाह की बात चलाई गई, तो उसके मन के किसी कोने में सोया हुआ पुलक सहसा जाग उठा। उसे सचमुच लगा जैसे उसका खोया हुआ जीवन उसे वापस मिल रहा हो; जैसे अन्दर की एक टूटी हुई कल्पना फिर से आकार ग्रहण कर रही हो। हवा और आकाश में उसे एक और ही आकर्षण लगने लगा, रास्ते में बिकती हुई फूलों की बेनियां पहले से कहीं सुगन्धित प्रतीत होने लगीं। निर्मला ब्याह कर उसके घर में आई भी नहीं थी कि वह शाम को लौटते हुए उसके लिए बेनियां खरीदकर घर लाने लगा। अपना पहले का घर उसे छोटा लगने लगा, इसलिए उसने एक बड़ा घर ले लिया और उसे सजाने के लिए नया-नया सामान खरीद लाया। पास में ज्यादा पैसे नहीं थे, इसलिए कर्ज़ ले-लेकर भी उसने निर्मला के लिए न जाने क्या कुछ बनवा डाला....।

निर्मला हंसती हुई उसके घर में आई—और हंसती ही रही...।

पहले तो कुछ दिन वह नहीं समझ सका कि वह हंसी क्या है। निर्मला जब कभी बिना बात के हंसना शुरू कर देती और देर तक हंसती रहती। वह अवाक् होकर उसे देखता रहता। तीन-तीन चार-चार साल के बच्चे भी उस तरह आकस्मिक ढंग से नहीं हंस सकते जैसे वह हंसती थी। कोई व्यक्ति उसके सामने गिर जाता या कोई चीज़ किसीके हाथ से गिरकर टूट जाती तो उसके लिए अपनी हंसी रोकना असम्भव हो जाता। लगातार दस-दस मिनट तक वह हंसी से बेहाल हो रहती। वह उसे समझाने की चेष्टा करता कि ऐसी बातों पर नहीं हंसा जाता, तो निर्मला को और भी हंसी छूटती। वह उसे डांट देता, तो वह उसी तरह आकस्मिक ढंग से बिस्तर पर लेटकर हाथ-पैर पटकती हुई रोने लगती, चिल्ला-चिल्लाकर अपनी मरी हुई मां को पुकारने लगती और अन्त में

उस लड़की का विवाह नहीं हो सका था। उसके साथ निर्मला के विवाह की बात चलाई गई, तो उसके मन के किसी कोने में सोया हुआ पुलक सहसा जाग उठा। उसे सचमुच लगा जैसे उसका खोया हुआ जीवन उसे वापस मिल रहा हो; जैसे अन्दर की एक टूटी हुई कल्पना फिर से आकार ग्रहण कर रही हो। हवा और आकाश में उसे एक और ही आकर्षण लगने लगा, रास्ते में बिकती हुई फूलों की बेनियां पहले से कहीं सुगन्धित प्रतीत होने लगीं। निर्मला ब्याह कर उसके घर में आई भी नहीं थी कि वह शाम को लौटते हुए उसके लिए बेनियां खरीदकर घर लाने लगा। अपना पहले का घर उसे छोटा लगने लगा, इसलिए उसने एक बड़ा घर ले लिया और उसे सजाने के लिए नया-नया सामान खरीद लाया। पास में ज़्यादा पैसे नहीं थे, इसलिए कर्ज़ ले-लेकर भी उसने निर्मला के लिए न जाने क्या कुछ बनवा डाला....।

निर्मला हंसती हुई उसके घर में आई—और हंसती ही रही...।

पहले तो कुछ दिन वह नहीं समझ सका कि वह हंसी क्या है। निर्मला जब कभी बिना बात के हंसना शुरू कर देती और देर तक हंसती रहती। वह अवाक् होकर उसे देखता रहता। तीन-तीन चार-चार साल के बच्चे भी उस तरह आकस्मिक ढंग से नहीं हंस सकते जैसे वह हंसती थी। कोई व्यक्ति उसके सामने गिर जाता या कोई चीज़ किसीके हाथ से गिरकर टूट जाती तो उसके लिए अपनी हंसी रोकना असम्भव हो जाता। लगातार दस-दस मिनट तक वह हंसी से बेहाल हो रहती। वह उसे समझाने की चेष्टा करता कि ऐसी बातों पर नहीं हंसा जाता, तो निर्मला को और भी हंसी छूटती। वह उसे डांट देता, तो वह उसी तरह आकस्मिक ढंग से बिस्तर पर लेटकर हाथ-पैर पटकती हुई रोने लगती, चिल्ला-चिल्लाकर अपनी मरी हुई मां को पुकारने लगती और अन्त में

बाल बिखेरकर और देवी का रूप धारण करके घर-भर को शाप देने लगती। कभी अपने कपड़े फाड़कर इधर-उधर छिपा देती और गहने जूतों के अन्दर संभाल देती। कभी अपनी बांह पर फोड़े की कल्पना करके वह दो-दो दिन उसके दर्द से कराहती रहती और फिर सहसा स्वस्थ होकर कपड़े धोने लगती और सुबह से शाम तक कपड़े ही धोती रहती।

जब मन शान्त होता, तो मुंह गोल किए वह अंगूठा चूसने लगती।

उठते-बैठते, खाते-पीते प्रकाश के सामने निर्मला के तरह-तरह के रूप आते रहते और उसका मन एक अंधे कुएं में गिरने लगता। रास्ते पर चलते हुए उसके चारों तरफ एक शून्य-सा घिर आता और वह कई बार भौंचक्का-सा सड़क के किनारे खड़ा होकर सोचने लगता कि वह घर से क्यों आया है और कहां जा रहा है। उसका किसीसे भी मिलने और कहीं भी आने-जाने को मन न होता। उसका मन जिस शून्य में भटकता रहता, उसमें कई बार उसे एक बच्चे की किलकारियां सुनाई देने लगतीं और वह बिलकुल जड़ होकर देर-देर तक एक ही जगह पर खड़ा या बैठा रहता। एक बार चलते-चलते खम्भे से टकराकर वह नाली में गिर गया। एक बार बस पर चढ़ने की कोशिश में नीचे गिर जाने से उसके कपड़े पीछे से फट गए और वह इससे बेखबर दूसरी बस में चढ़कर आगे चल दिया। उसे पता तब चला जब किसीने रास्ते में उससे कहा, "जेंटलमैन, तुम्हें क्या घर जाकर कपड़े बदल नहीं लेने चाहिएं?"

उसे लगता था जैसे वह जी न रहा हो, सिर्फ अन्दर ही अन्दर घुट रहा हो। क्या यही वह ज़िन्दगी थी जिसे पाने के लिए उसने वर्षों तक अपने से संघर्ष किया था?

उसे क्रोध आता कि जुनेजा ने उसके साथ इस तरह का विश्वासघात क्यों किया? उस लड़की को किसी मानसिक चिकित्सालय में भेजने की जगह उसका ब्याह क्यों कर दिया? उसने जुनेजा को इस सम्बन्ध में

पत्र लिखे, परन्तु उसकी ओर से उसे कोई उत्तर नहीं मिला। उसने जुनेजा को बुला भेजा, तो वह आया भी नहीं। वह स्वयं जुनेजा से मिलने के लिए गया, तो उसे जवाब मिला कि निर्मला अब उसकी पत्नी है—निर्मला के मायके के लोगों का उस मामले में अब कोई दखल नहीं है।

और निर्मला घर में उसी तरह हंसती और रोती रही…!

"तुम मेरे भाई से क्या पूछने के लिए गए थे?" वह बाल बिखेरकर 'देवी' का रूप धारण किए हुए कहती, "तुम बीना की तरह मुझे भी तलाक देना चाहते हो? किसी तीसरी को घर में लाना चाहते हो? मगर मैं बीना नहीं हूं। वह सती नारी नहीं थी। मैं सती नारी हूं। तुम मुझे छोड़ने की बात भी मन में लाओगे, तो मैं इस घर को जलाकर भस्म कर दूंगी—सारे शहर में भूचाल ले आऊंगी। लाऊं भूचाल?" और बांहें फैलाकर वह कहने लगती, "आ भूचाल आ…आ! मैं सती नारी हूं, तो इस घर की ईंट से ईंट बजा दे। आ, आ, आ!"

वह उसे शान्त करने की चेष्टा करता, तो वह कहती, "तुम मुझसे दूर रहो। मेरे शरीर को हाथ मत लगाओ। मैं सती हूं। देवी हूं। साधवी हूं। तुम मेरा सतीत्व नष्ट करना चाहते हो? मुझे खराब करना चाहते हो? मेरा तुमसे ब्याह कब हुआ है? मैं तो अभी तक कंवारी हूं। छोटी-सी मासूम बच्ची हूं। संसार का कोई भी पुरुष मुझे नहीं छू सकता। मैं आध्यात्मिक जीवन जीती हूं। मुझे कोई छूकर देखे तो सही…।"

और बाल बिखेरे हुए इसी तरह बोलती हुई कभी वह घर की छत पर पहुंच जाती और कभी बाहर निकलकर घर के आसपास चक्कर काटने लगती। प्रकाश ने दो-एक बार होठों पर हाथ रखकर उसका मुंह बन्द कर देना चाहा, तो वह और भी ज़ोर से चिल्ला उठी, "तुम मेरा मुंह बन्द करना चाहते हो? मेरा गला घोटना चाहते हो? मुझे मारना चाहते हो? तुम्हें पता है मैं साक्षात् देवी हूं? मेरे चारों भाई मेरे चार

शेर हैं ! वे तुम्हें नोंच-नोंचकर खा जाएंगे। उन्हें पता है—उनकी बहन देवी का स्वरूप है। कोई मेरा बुरा चाहेगा, तो वे उसे उठाकर ले जाएंगे और काल-कोठरी में बन्द कर देंगे। मेरे बड़े भाई ने अभी-अभी नई कार ली है। मैं उसे चिट्ठी लिख दूं, तो वह अभी कार लेकर आ जाएगा और हाथ-पैर बांधकर तुम्हें कार में डालकर ले जाएगा। छः महीने बन्द रखेगा, फिर छोड़ेगा। तुम्हें पता नहीं वे चारों के चारों शेर कितने ज़ालिम है ? वे राक्षस हैं राक्षस। आदमी की बोटी-बोटी काट दें और किसीको पता भी न चले। मगर मैं उन्हें नहीं बुलाऊंगी। मैं सती नारी हूं, इसलिए अपने सत्य से ही अपनी रक्षा करूंगी···!"

सब प्रयत्नों से हारकर प्रकाश थका हुआ अपने पढ़ने के कमरे में बन्द होकर पड़ जाता, तो आधी रात तक वह साथ के कमरे में उसी तरह बोलती रहती। फिर बोलते-बोलते अचानक चुप कर जाती और थोड़ी देर के बाद उसका दरवाजा खटखटाने लगती।

"क्या बात है ?" वह कहता।

"इस कमरे में मेरी सांस रुक रही है," निर्मला उत्तर देती। "दरवाज़ा खोलो, मुझे अस्पताल जाना है !"

"इस समय सो जाओ," वह कहता, "सुबह तुम जहां कहोगी, वहां ले चलूंगा।"

"मैं कहती हूं दरवाजा खोलो, मुझे अस्पताल जाना है।" और वह ज़ोर-ज़ोर से धक्के देकर दरवाज़ा तोड़ने लगती।

प्रकाश दरवाज़ा खोल देता, तो वह हंसती हुई उसके सामने आ जाती।

"तुम्हें हंसी किस बात की आ रही है ?" प्रकाश कहता।

"तुम्हें लगता है मैं हंस रही हूं ?" वह और भी ज़ोर से हंसने लगती। "यह हंसी नहीं, रोना है, रोना।"

"तुम अस्पताल चलना चाहती हो ?"

"क्यों ?"

"अभी तुम कह रही थीं···!"

"मैं अस्पताल चलने के लिए कहां कह रही थी ? मैं तो कह रही थी कि मुझे उस कमरे में डर लगता है, मैं यहां तुम्हारे पास सोऊंगी।"

"देखो निर्मला, इस समय मेरा मन ठीक नहीं है। तुम थोड़ी देर में चाहे मेरे पास आ जाना, मगर इस समय थोड़ी देर के लिए···।"

"मैं कहती हूं, मैं अकेली उस कमरे में नहीं सो सकती। मेरे जैसी मासूम बच्ची क्या कभी अकेली सो सकती है ?"

"तुम मासूम बच्ची नहीं हो, निर्मला !"

"तो तुम्हें मैं बड़ी नज़र आती हूं ? एक छोटी-सी बच्ची को बड़ी कहते तुम्हारे दिल को कुछ नहीं होता ? इसलिए कि तुम मुझे अपने पास सुलाना नहीं चाहते ? मगर मैं यहां से नहीं जाऊंगी। तुम्हें मुझे अपने साथ सुलाना पड़ेगा। मैं विधवा हूं जो अकेली सोऊंगी ? मैं सुहागिन नारी हूं। कोई सुहागिन क्या कभी अकेली सोती है ? मैं भांवरें लेकर तुम्हारे घर में आई हूं, ऐसे ही उठाकर नहीं लाई गई। देखती हूं तुम कैसे मुझे उस कमरे में भेजते हो ?" और वह प्रकाश के पास लेटकर उससे लिपट जाती।

कुछ देर में जब उसके स्नायु शान्त हो चुकते, तो वह लगातार उसे चूमती हुई कहती, "मेरा सुहाग ! मेरा चांद ! मेरा राजा ! मैं तुम्हें कभी अपने से अलग रख सकती हूं ? तुम मेरे साथ एक सौ छत्तीस बरस की उम्र तक जियोगे। मुझे यह वर मिला हुआ है कि मैं एक सौ छत्तीस बरस की उम्र तक सुहागिन रहूंगी। जिसकी भी मुझसे शादी होती, वह एक सौ छत्तीस बरस की उम्र तक जीता। तुम देख लेना मेरी बात सच्ची निकलती है या नहीं। मैं सती नारी हूं और सती नारी के मुंह से निकली

हुई बात कभी झूठी नहीं हो सकती''''।"

"तुम सुबह मेरे साथ अस्पताल चलोगी ?" प्रकाश कहता।

"क्यों, मुझे क्या हुआ है जो मैं अस्पताल जाऊंगी ? मुझे तो आज तक सिरदर्द भी नहीं हुआ। मैं अस्पताल क्यों जाऊं ?"

एक दिन प्रकाश उसके लिए कई एक किताबें खरीद लाया। उसने सोचा था कि शायद पढ़ने से निर्मला के मन को एक दिशा मिल जाए और वह धीरे-धीरे अपने मन के अंधेरे से बाहर निकलने लगे। मगर निर्मला ने उन किताबों को देखा, तो मुंह बिचकाकर एक तरफ हटा दिया।

"ये किताबें मैं तुम्हारे पढ़ने के लिए लाया हूं," प्रकाश ने कहा।

"मेरे पढ़ने के लिए ?" निर्मला आश्चर्य के साथ बोली। "मैं इन किताबों को पढ़कर क्या करूंगी ? मैंने तो मार्क्सवाद, मनोविज्ञान और सभी कुछ चौदह साल की उम्र में पढ़ लिया था। अब इतनी बड़ी होकर मैं ये किताबें पढ़ने लगूंगी ?"

और उसके पास से उठकर अंगूठा चूसती हुई वह कमरे से बाहर चली गई।

"पापा !"

कोहरे के बादलों में भटका हुआ मन सहसा बालकनी पर लौट आया। खिलनमर्ग को जानेवाली सड़क पर बहुत-से लोग घोड़े दौड़ाते जा रहे थे—एक धुंधले चित्र की बुझी-बुझी आकृतियों जैसे। वैसी ही बुझी-बुझी आकृतियां क्लब से बाजार की तरफ आ रही थीं। बाईं ओर बर्फ से ढकी हुई पहाड़ी की एक चोटी कोहरे से बाहर निकल आई थी और जाने किधर से आती हुई सूर्य की किरण ने उसे दीप्त कर दिया था। कोहरे में भटके हुए कुछ पक्षी उड़ते हुए उस चोटी के सामने आ

गए, तो सहसा उनके पंख सुनहरे हो उठे—मगर अगले ही क्षण वे फिर धुंधलके में खो गए।

प्रकाश कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और झांककर नीचे सड़क की तरफ देखने लगा। क्या वह आवाज़ पलाश की नहीं थी ? परन्तु सड़क पर दूर-दूर तक ऐसी कोई आकृति दिखाई नहीं दे रही थी जिसे उसकी आंखें उस बच्चे के रूप में पहचान सकें। आंखों ही आंखों टूरिस्ट होटल के गेट तक जाकर वह लौट आया और गले पर हाथ रखकर जैसे निराशा की चुभन को रोके हुए फिर कुर्सी पर बैठ गया। दस के बाद ग्यारह, बारह और फिर एक भी बज गया था और बच्चा नहीं आया था। क्या बच्चे के पहले जन्मदिन की घटना आज फिर दोहराई जानी थी ? मुट्ठियां बन्द किए उनपर माथा रखकर वह बालकनी पर झुक गया।

"पापा !"

उसने चौंककर सिर उठाया। वही कोहरा और वही धुंधली सुनसान सड़क। दूर घोड़ों की टापें और धीमी चाल से उस तरफ को आता हुआ एक कश्मीरी मज़दूर ! क्या वह आवाज़ उसे अपने कानों के पर्दों के अन्दर से ही सुनाई दे रही थी ?

तभी उन पर्दों के अन्दर दो नन्हे पैरों की आवाज़ भी गूंज गई और उसकी बाहों के बहुत पास ही बच्चे का स्वर किलक उठा, "पापा !" साथ ही दो नन्ही-नन्ही बांहें उसके गले से लिपट गईं और बच्चे के झंडूले बाल उसके होंठों से छू गए।

प्रकाश ने एक बार बच्चे के शरीर को सिर से पैर तक छूकर देख लिया कि यह आकार भी उसकी कल्पना का स्वप्न तो नहीं है। विश्वास हो जाने पर कि बच्चा सचमुच उसकी गोदी में है, उसने उसके माथे और आंखों को कसकर चूम लिया।

"तो मैं जाऊं पलाश ?" एक भूली हुई मगर परिचित आवाज़ ने

प्रकाश को फिर चौंका दिया। उसने घूमकर पीछे देखा। कमरे के दरवाज़े के बाहर बीना दाईं ओर न जाने किस चीज़ पर आंखें गड़ाए खड़ी थी।

"आप ?...आ आइए आप ...!" कहता हुआ बच्चे को बांहों में लिए प्रकाश अस्तव्यस्त-सा कुर्सी से उठ खड़ा हुआ।

"नहीं, मैं जा रही हूं", बीना ने फिर भी उसकी तरफ नहीं देखा। "मुझे इतना बता दीजिए कि बच्चा कब तक लौटकर आएगा ?"

"आप...जब कहें, तभी भेज दूंगा।" प्रकाश बालकनी की दहलीज़ लांघकर कमरे में आ गया।

"चार बजे इसे दूध पीना होता है।"

"तो चार बजे तक मैं इसे वहां पहुंचा दूंगा।"

"इसने हल्का-सा स्वेटर ही पहन रखा है। दूसरे पुलोवर की ज़रूरत तो नहीं पड़ेगी ?"

"आप दे दीजिए। ज़रूरत पड़ेगी, तो मैं इसे पहना दूंगा।"

बीना ने दहलीज़ के उस तरफ से ही पुलोवर उसकी तरफ बढ़ा दिया। उसने पुलोवर लेकर उसे शाल की तरह बच्चे को ओढ़ा दिया। "आप..." उसने बीना से कहना चाहा कि वह अन्दर आ जाए, मगर उससे कहा नहीं गया। बीना चुपचाप जीने की तरफ चल दी। प्रकाश कमरे से निकल आया। जीने से बीना ने फिर कहा, "देखिए इसे आइसक्रीम मत खिलाइएगा। इसका गला बहुत जल्द खराब हो जाता है।"

"अच्छा !"

बीना पल-भर रुकी रही। शायद उसे और भी कुछ कहना था। मगर फिर बिना कुछ कहे वह नीचे उतर गई। बच्चा प्रकाश की गोदी में उछलता हुआ हाथ हिलाता रहा, "ममी, टा टा ! टा टा !"

प्रकाश उसे लिए बालकनी पर लौट आया, तो वह उसके गले में बांहें डालकर बोला, "पापा, मैं आइछ क्लीम जलूल थाऊंदा।"

"हां, हां, बेटे !" प्रकाश उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगा। "जो तेरे मन में आए, सो खाना। हां ?"

और कुछ देर के लिए वह अपने को, बालकनी को और यहां तक कि बच्चे को भी भूला हुआ आकाश को देखता रहा।

कोहरे का पर्दा धीरे-धीरे उठने लगा, तो मीलों में फैले हुए हरियाली के रंगमंच की धुंधली रेखाएं सहसा स्पष्ट हो उठीं।

वे दोनों गॉल्फ ग्राउंड पार करके क्लब की तरफ जा रहे थे। चलते हुए बच्चे ने पूछा, "पापा, आदमी के दो टांगें क्यों होती हैं ? चार क्यों नहीं होतीं ?"

प्रकाश ने चौंककर उसकी तरफ देखा और कहा, "अरे !"

"क्यों पापा," बच्चा बोला, "तुमने अरे क्यों कहा है ?"

"तू इतना साफ बोल सकता है, तो अब तक तुतलाकर क्यों बोल रहा था ?" प्रकाश ने उसे बांहों में उठाकर एक अभियुक्त की तरह अपने सामने कर लिया। बच्चा खिलखिलाकर हंस पड़ा। प्रकाश को लगा कि यह वैसी ही हंसी है जैसी कभी वह स्वयं हंसा करता था। बच्चे के चेहरे की रेखाओं से भी उसे अपने बचपन के चेहरे की याद आने लगी। उसे लगा जैसे एकाएक उसका तीस बरस पहले का चेहरा उसके सामने आ गया हो और वह स्वयं उस चेहरे के सामने एक अभियुक्त की तरह खड़ा हो।

"ममी तो ऐछे ही अच्छा लदता है," बच्चे ने कहा।

"क्यों ?"

"मेले तो नहीं पता। तुम ममी छे पूछ लेना।"

"तैरी ममी तेरे को ज़ोर से हंसने से भी मना करती है ?" प्रकाश को वे दिन याद आ रहे थे जब उसके खिलखिलाकर हंसने पर बीना कानों पर हाथ रख लिया करती थी।

बच्चे की बांहें उसकी गरदन के पास कस गईं। "हां," वह बोला। "ममी तहती है अच्छे बच्चे जोल छे नहीं हंछते।"

प्रकाश ने उसे बांहों से उतार दिया। बच्चा उसकी उंगली पकड़े हुए घास पर चलने लगा। "त्यों पापा," उसने पूछा। "अच्छे बच्चे जोल छे त्यों नहीं हंछते ?"

"हंसते हैं बेटे !" प्रकाश ने उसके सिर को सहलाते हुए कहा। "सब अच्छे बच्चे ज़ोर से हंसते हैं।"

"तो ममी मेले तो त्यों लोतती है ?"

"नहीं रोकती बेटे। अब वह तुझे नहीं रोकेगी। और तू तुतलाकर नहीं, ठीक से बोला कर। तेरी ममी तुझे इसके लिए भी मना नहीं करेगी। मैं उससे कह दूंगा।"

"तो तुमने पहले ममी छे त्यों नहीं तहा।"

"ऐसे नहीं, कह कि तुमने पहले ममी से क्यों नहीं कहा।"

बच्चा फिर हंस दिया। "तो तुमने पहले ममी से क्यों नहीं कहा ?"

"पहले मुझे याद नहीं रहा। अब याद से कह दूंगा।"

कुछ देर दोनों चुपचाप चलते रहे। फिर बच्चे ने पूछा, "पापा, तुम मेरे जनम दिन की पार्टी में क्यों नहीं आए ? ममी कहती थी तुम विलायत गए हुए थे।"

"हां बेटे, मैं विलायत गया हुआ था।"

"तो पापा, अब तुम फिर से विलायत नहीं जाना।"

"क्यों ?"

"मेरे को अच्छा नहीं लगता। विलायत जाकर तुम्हारी शकल और

ही तरह की हो गई है।"

प्रकाश एक रूखी-सी हंसी हंसा और बोला, "कैसी हो गई है शक्ल ?"

"पता नहीं कैसी हो गई है। पहले दूसरी तरह की थी, अब दूसरी तरह की है।"

"दूसरी तरह की कैसे ?"

"पता नहीं पहले तुम्हारे बाल काले-काले थे। अब सफेद-सफेद हो गए हैं।"

"तू इतने दिन मेरे पास नहीं आया, इसीलिए मेरे बाल सफेद हो गए हैं।"

बच्चा इतने ज़ोर से हंसा कि उसके कदम लड़खड़ा गए। "अरे पापा, तुम तो विलायत गए हुए थे," उसने कहा। "मैं तुम्हारे पास कैसे आता ? मैं क्या अकेला विलायत जा सकता हूं ?"

"क्यों नहीं जा सकता ? तू इतना बड़ा तो है।"

"मैं सचमुच बड़ा हूं न पापा ?" बच्चा ताली बजाता हुआ बोला। "तुम यह बात भी ममी से कह देना। वह कहती है मैं अभी बहुत छोटा हूं। मैं छोटा नहीं हूं न पापा ?"

"नहीं, तू छोटा कहां है ?" कहकर प्रकाश मैदान में दौड़ने लगा। "तू भागकर मुझे पकड़।"

बच्चा अपनी छोटी-छोटी टांगें पटकता हुआ दौड़ने लगा। प्रकाश को फिर अपने बचपन की एक बात याद हो आई। तब उसे दौड़ते देखकर एक बार किसीने कहा था, "अरे यह बच्चा कैसे टांगें पटक-पटककर दौड़ता है। इसे ठीक से चलना नहीं आता है क्या ?"

बच्चे की उंगली पकड़े हुए प्रकाश क्लब के बाररूम में दाखिल हुआ,

तो बारमैन अब्दुल्ला उसे देखते ही दूर से मुसकराया। "साहब के लिए दो बोतल बियर," उसने पास खड़े बैरे से कहा। साहब आज अपने एक मेहमान के साथ आया है।"

"बच्चे के लिए एक गिलास पानी दे दो," प्रकाश ने काउंटर के पास पहुंचकर कहा। "इसे प्यास लगी है।"

"खाली पानी ?" अब्दुल्ला बच्चे के गालों को प्यार से सहलाने लगा। "और सब दोस्तों को तो साहब बियर पिलाता है और इस बेचारे को खाली पानी !" और ठंडे पानी की बोतल खोलकर वह गिलास में पानी डालने लगा। जब वह गिलास बच्चे के मुंह के पास ले गया, तो बच्चे ने वह उसके हाथों से ले लिया। "मैं अपने-आप पिऊंगा," उसने कहा। "मैं छोटा थोड़े ही हूं ? मैं तो बड़ा हूं।"

"अच्छा तू बड़ा है ?" अब्दुल्ला हंसा। "तब तो तुझे पानी देकर मैंने गलती की। बड़े लोगों को तो मैं बियर पिलाता हूं।"

"बियर क्या होता है ?" बच्चे ने मुंह से गिलास हटाकर पूछा।

"बियर होता नहीं, होती है।" अब्दुल्ला ने झुककर उसे चूम लिया। "तुझे पिलाऊं क्या ?"

"नहीं," कहकर बच्चे ने अपनी बांहें प्रकाश की तरफ फैला दीं। प्रकाश उसे लेकर ड्योढ़ी की तरफ चला, तो अब्दुल्ला भी उन दोनों के साथा-साथ बाहर चला आया। "किसका बच्चा है, साहब ?" उसने धीमे स्वर में पूछा।

"मेरा लड़का है," कहकर प्रकाश बच्चे को सीढ़ी से उतारने लगा।

अब्दुल्ला हंस दिया। "साहब बहुत खुशदिल आदमी है," उसने कहा।

"क्यों ?"

अब्दुल्ला हंसता हुआ सिर हिलाने लगा। "आपका भी जवाब

नहीं है।"

प्रकाश गुस्से में कुछ कहने को हुआ मगर अपने को रोककर बच्चे को लिए हुए आगे चल दिया। अब्दुल्ला ड्योढ़ी में रुका हुआ पीछे से सिर हिलाता रहा। बैरा शेर मुहम्मद अन्दर से निकलकर आया, तो वह फिर खिलखिलाकर हंस दिया।

"क्या बात है ? अकेला खड़ा-खड़ा कैसे हंस रहा है ?" शेर मुहम्मद ने पूछा।

"साहब का भी जवाब नहीं है," अब्दुल्ला किसी तरह हंसी पर काबू पाकर बोला।

"किस साहब का जवाब नहीं है ?"

"उस साहब का," अब्दुल्ला ने प्रकाश की तरफ इशारा किया। "उस दिन बोलता था कि इसने अभी इसी साल शादी की है और आज बोलता है कि यह पांच साल का बाबा इसका लड़का है। जब आया था, तो अकेला था और आज इसके लड़का भी हो गया !" प्रकाश ने एक बार घूमकर तीखी नज़र से उसकी तरफ देख लिया। अब्दुल्ला एक बार फिर खिलखिला उठा। "ऐसा खुशदिल आदमी मैंने आज तक नहीं देखा।"

"पापा, घास हरी क्यों होती है ? लाल क्यों नहीं होती ?" क्लब से निकलकर प्रकाश ने बच्चे को एक घोड़ा किराये पर ले दिया था। लिनेनमर्ग को जानेवाली पगडंडी पर वह खुद उसके साथ-साथ पैदल चल रहा था। घास के रेशमी विस्तार पर कोहरे का आकाश इस तरह झुका हुआ था जैसे वासना का उन्माद उसे फिर से घिर आने के लिए प्रेरित कर रहा हो। बच्चा उत्सुक आंखों से आसपास की पहाड़ियों को और बीच से बहकर जाती हुई पानी की पतली धार को देख रहा था। कभी कुछ क्षणों के लिए वह अपने को भूला रहता, फिर किसी अज्ञात भाव से

प्रेरित होकर काठी पर उछलने लगता।

"हर चीज़ का अपना रंग होता है," प्रकाश ने बच्चे की एक जांघ को हाथ से दबाए हुए कहा और कुछ देर के लिए स्वयं भी हरियाली के विस्तार में खोया रहा।

"हर चीज़ का अपना रंग क्यों होता है?"

"यह कुदरत की बात है बेटे, कुदरत ने हर चीज़ का अपना रंग बना दिया है।"

"कुदरत क्या होती है?"

प्रकाश ने झुककर उसकी जांघ को चूम लिया। "कुदरत यह होती है," उसने हंसकर कहा। जांघ पर गुदगुदी होने से बच्चा भी हंसने लगा।

"तुम झूठ बोलते हो," उसने कहा।

"क्यों?"

"तुमको इसका पता ही नहीं है।"

"अच्छा, मुझे पता नहीं है, तो तू बता घास का रंग हरा क्यों होता है?"

"घास मिट्टी के अन्दर से पैदा होती है, इसलिए इसका रंग हरा होता है।"

"अच्छा? तुझे इसका कैसे पता चल गया?"

बच्चा उछलता हुआ लगाम को झटकने लगा। "मेरे को ममी ने बताया था।"

प्रकाश के होंठों पर एक विकृत-सी मुस्कराहट आ गई, जिसे उसने किसी तरह दबा लिया। उसे लगा जैसे आज भी उसके और बीना के बीच में एक द्वन्द्व चल रहा हो और बीना उस द्वन्द्व में उसपर भारी पड़ने की चेष्टा कर रही हो। "तेरी ममी ने तुझे और क्या-क्या बता रखा है?" वह बच्चे को थपथपाकर बोला, "यह भी बता रखा है कि

आदमी के दो टांगें क्यों होती हैं और चार क्यों नहीं ?"

"हां। ममी कहती थी कि आदमी के दो टांगें इसलिए होती हैं कि वह आधा ज़मीन पर चलता है और आधा आसमान में।"

"अच्छा !" प्रकाश के होंठों पर हंसी और मन में उदासी की रेखा फैल गई। "मुझे इसका नहीं पता था," उसने कहा।

"तुमको तो कुछ भी पता नहीं है, पापा !" बच्चा बोला। "इतने बड़े होकर भी पता नहीं है !"

घास, बर्फ और आकाश के रंग दिन में कई-कई बार बदल जाते थे। बदलते हुए रंगों के साथ मन भी और से और होने लगता था। सुबह उठते ही प्रकाश बच्चे के आने की प्रतीक्षा करने लगता। बार-बार वह बालकनी पर चला जाता और टूरिस्ट होटल की तरफ आंखें किए देर-देर तक खड़ा रहता। नाश्ता करने या खाना खाने के लिए भी वह वहां से नहीं हटना चाहता था। उसे डर लगता था कि बच्चा इस बीच आकर लौट न जाए। तीन दिन में उसे साथ लिए हुए वह कितनी ही बार घूमने के लिए गया था, उसके घोड़े के पीछे-पीछे दौड़ा था और उसके साथ घास पर लोटता रहा था। कभी एक दोस्त की तरह वह उसके साथ खिल-खिलाकर हंसता, कभी एक नौकर की तरह उसके हर आदेश का पालन करता। बच्चा जान-बूझकर रास्ते के कीचड़ में अपने पांव लथपथ कर लेता और फिर होंठ बिसोरकर कहता, "पापा, पांव धो दो।" वह उसे उठाए हुए इधर-उधर पानी ढूंढ़ता फिरता। बच्चे को वह जिस कोण से भी देखता, उसी कोण से उसकी तस्वीर ले लेना चाहता। जब बच्चा थक जाता और लौटकर अपनी ममी के पास जाने का हठ करने लगता, तो वह उसे तरह-तरह के प्रलोभन देकर अपने पास रोक रखना चाहता। एक बार उसने बच्चे को अपनी मां के साथ दूर से आते देखा था और उसे

साथ लाने के लिए उतरकर नीचे चला गया था। जब वह पास पहुंचा, तो बच्चा दौड़कर उसकी तरफ ग्राने की बजाय मां के साथ फोटोग्राफर की दुकान के अन्दर चला गया। वह कुछ देर सड़क पर रुका रहा; फिर यह सोचकर ऊपर चला आया कि फोटोग्राफर की दुकान से खाली होकर बच्चा अपने-आप ऊपर आ जाएगा। मगर बालकनी पर खड़े-खड़े उसने देखा कि बच्चा दुकान से निकलकर उस तरफ आने की बजाय हठ के साथ अपनी मां का हाथ खींचता हुआ उसे वापस टूरिस्ट होटल की तरफ ले चला। उसका मन हुआ कि दौड़कर जाए और बच्चे को अपने साथ ले जाए, मगर कोई चीज़ उसके पैरों को जकड़े रही और वह चुपचाप वहीं खड़ा उसे देखता रहा। शाम तक वह न जाने कितनी बार बालकनी पर आया और कितनी-कितनी देर तक खड़ा रहा। आखिर उससे नहीं रहा गया, तो उसने नीचे जाकर कुछ चेरी खरीदी और बच्चे को देने के बहाने टूरिस्ट होटल की तरफ चल दिया। अभी वह टूरिस्ट होटल से कुछ दूर ही था कि बच्चा अपनी मां के साथ बाहर आता दिखाई दिया। मगर उसपर नज़र पड़ते ही वह वापस होटल की गैलरी में भाग गया।

प्रकाश जहां था, वहीं खड़ा रहा। उस समय पहली बार उसकी आंखें बीना से मिलीं। उसे महसूस हुआ कि बीना का चेहरा पहले से कहीं सांवला हो गया है और उसकी आंखों के नीचे स्याह दायरे-से उभर आए हैं। वह पहले से काफी दुबली भी लग रही थी। कुछ क्षण रुके रहने के बाद प्रकाश आगे चला गया और चेरीवाला लिफाफा बीना की तरफ बढ़ाकर उसने खुश्क गले से कहा, "यह मैं बच्चे के लिए लाया था।"

बीना ने लिफाफा ले लिया मगर साथ ही उसकी आंखें दूसरी तरफ हट गईं। "पलाश!" उसने कुछ अस्थिर आवाज़ में बच्चे को पुकारकर कहा। "यह ले, तेरे पापा तेरे लिए चेरी लाए हैं।"

"मैं नहीं लेता," बच्चे ने गैलरी से कहा और भागकर और भी दूर चला गया।

बीना ने एक असहाय दृष्टि बच्चे पर डाली और फिर प्रकाश की तरफ देखकर बोली, "कहता है मैं पापा से नहीं बोलूंगा। वे सुबह रुके क्यों नहीं, चले क्यों गए थे ?"

प्रकाश बीना को उत्तर न देकर गैलरी में चला गया और कुछ दूर तक बच्चे का पीछा करके उसे बांहों में उठा लाया। "मैं तुमसे नहीं बोलूंगा, कभी नहीं बोलूंगा," बच्चा अपने को छुड़ाने की चेष्टा करता हुआ कहता रहा।

"क्यों, ऐसी क्या बात है ?" प्रकाश उसे पुचकारने की चेष्टा करने लगा। "पापा से भी इस तरह नाराज़ होते हैं क्या ?"

"तुमने मेरी तस्वीरें क्यों नहीं देखीं ?"

"कहां थीं तेरी तस्वीरें ? मुझे तो पता ही नहीं था।"

"पता क्यों नहीं था ? तुम दुकान के बाहर से ही क्यों चले गए थे ?"

"अच्छा ला, पहले तेरी तस्वीरें देखें, फिर घूमने चलेंगे।"

"यह सुबह आपको दिखाने के लिए ही तस्वीरें लेने गया था," बीना के साथ खड़ी नवयुवती ने कहा। प्रकाश इस बात को भूल ही गया था कि उन दोनों के साथ कोई और भी है।

"तस्वीरें मेरे पास थोड़े ही हैं ? उसीके पास हैं।"

"सुबह फोटोग्राफर ने नेगेटिव ही दिखाए थे, पॉज़िटिव वह अब इस समय देगा," उस नवयुवती ने फिर कहा।

"तो चल, पहले दुकान पर चलकर तेरी तस्वीरें ले लें। हां, देखें तो सही कैसी तस्वीरें हैं !" कहकर प्रकाश फोटोग्राफर की दुकान की तरफ चलने लगा।

'मैं ममी को साथ लेकर जाऊंगा," बच्चे ने उसकी बांहों में मचलते

हुए कहा।

"हां, हां, तेरी ममी भी साथ आ रही है," प्रकाश ने एक बार निरुपाय-सी दृष्टि से पीछे की तरफ देख लिया और जैसे किसी अदृश्य व्यक्ति से कहा, "देखिए, आप भी साथ आ जाइए, नहीं तो यह रोने लगेगा।"

बीना होंठ दांतों में दबाए हुए कुछ क्षण आंखें झपकती रहीं, फिर चुपचाप साथ चल दी।

फोटोग्राफर की दुकान में दाखिल होते ही बच्चा प्रकाश की बांहों से उतर गया और आदेश के स्वर में फोटोग्राफर से बोला, "मेरे पापा को मेरी तस्वीरें दिखाओ।" उसके स्वर से कुछ ऐसा भी लगता था जैसे वह अपने पर लगाए गए किसी अभियोग का उत्तर दे रहा हो। फोटोग्राफर ने तस्वीरें निकालकर मेज पर फैला दीं, तो बच्चा उनमें से एक-एक तस्वीर चुनकर प्रकाश को दिखाने लगा। "देखो पापा, यह वहीं की तस्वीर है न जहां से तुमने कहा था कि सारा कश्मीर नजर आता है? और यह तस्वीर भी देखो पापा, जो तुमने मेरी घोड़े पर उतारी थी...।"

"दो दिन से बिलकुल साफ बोलने लगा है," बीना की सहेली ने धीरे से कहा। "कहता है पापा ने कहा है कि तू बड़ा हो गया है, इसलिए अब तुतलाकर न बोला कर।"

प्रकाश कुछ न कहकर तस्वीरें देखता रहा। फिर जैसे कुछ याद हो आने से उसने दस रुपये का एक नोट निकालकर फोटोग्राफर को देते हुए कहा, "इसमें से आप अपने पैसे काट लीजिए!"

फोटोग्राफर पल-भर असमंजस में उसे देखता रहा। फिर बोला, "देखिए, पैसे तो अभी आप ही के मेरी तरफ निकलते हैं। मेम साहब ने जो बीस रुपये परसों दिए थे, उनमें से दो-एक रुपये अभी बचते होंगे। कहें, तो हिसाब कर दूं।"

"नहीं रहने दीजिए, हिसाब फिर हो जाएगा," कहकर प्रकाश ने नोट वापस जेब में रख लिया और बच्चे की उंगली पकड़े हुए दुकान से बाहर निकल आया। कुछ कदम चलने पर उसे पीछे से बीना का स्वर सुनाई दिया, "यह आपके साथ घूमने जा रहा है क्या ?"

"हां !" प्रकाश ने चौंककर पीछे देख लिया। "मैं अभी थोड़ी देर में इसे वापस छोड़ जाऊंगा।"

"देखिए, आपसे एक बात कहनी थी...।"

"कहिए...।"

बीना पल-भर सोचती हुई चुप रही। फिर बोली, "इसे ऐसी कोई बात न बताइएगा जिससे यह...।"

प्रकाश को लगा जैसे कोई चीज़ उसके स्नायुओं को चीरती चली गई हो। उसकी आंखें झुक गईं और उसने धीरे से कहा, "नहीं, मैं ऐसी कोई बात इससे नहीं कहूंगा।" उसे खेद होने लगा कि एक दिन पहले जब बच्चा हठ करके कह रहा था कि 'पापा' और 'पिताजी' एक ही व्यक्ति को नहीं कहते—'पापा' पापा को कहते हैं और 'पिताजी' ममी के पापा को कहते हैं—तो वह क्यों उसकी गलतफहमी दूर करने का प्रयत्न करता रहा था ?

वह बच्चे के साथ अकेला क्लब की सड़क पर चलने लगा, तो कुछ दूर जाकर बच्चा सहसा रुक गया। "हम कहां जा रहे हैं, पापा ?" उसने पूछा।

"पहले क्लब चल रहे हैं," प्रकाश ने कहा। "वहां से घोड़ा लेकर आगे घूमने जाएंगे।"

"नहीं, मैं वहां उस आदमी के पास नहीं जाऊंगा।" कहकर बच्चा सहसा पीछे की तरफ चल दिया।

"किस आदमी के पास ?"

"वह जो वहां पर क्लब में था। मैं उसके हाथ से पानी भी नहीं पिऊंगा।"

"क्यों?"

"मुझे वह आदमी अच्छा नहीं लगता।"

प्रकाश पल-भर बच्चे के चेहरे को देखता रहा, फिर वह भी वापस चल दिया। "हां, हम उस आदमी के पास नहीं चलेंगे," उसने कहा। "मुझे भी वह आदमी अच्छा नहीं लगता।"

बहुत दिनों के बाद उस रात प्रकाश को गहरी नींद आई थी। एक ऐसी विस्मृति-सी नींद जिसमें स्वप्न-दुःस्वप्न कुछ न हो, उसके लिए लगभग भूली हुई चीज़ हो चुकी थी। फिर भी जागने पर उसे अपने में एक ताजगी का अनुभव नहीं हुआ—अनुभव हुआ एक खालीपन का ही। जैसे कि कोई चीज़ उसके अन्दर उफनती रही हो, जो गहरी नींद सो लेने से चुक गई हो। रोज़ की तरह उठकर वह बालकनी पर गया। देखा आकाश साफ है। रात को सोया था, तो वर्षा हो रही थी। परन्तु उस धुले-निखरे हुए आकाश को देखकर आभास तक नहीं होता था कि कभी वहां बादलों का अस्तित्व भी था। सामने की पहाड़ियां सुबह की धूप में नहाकर बहुत उजली हो उठी थीं।

प्रकाश कुछ देर वहां खड़ा रहा—श्रान्तिरहित, और विचारहीन। फिर सहसा दूर के छोर में उठते हुए बादल की तरह उसे कोई चीज़ अपने में उमड़ती हुई प्रतीत हुई और उसका मन एक अज्ञात आशंका से सिहर गया। तो क्या···?

वह बालकनी से हट आया। पिछली शाम को बच्चे ने बताया था कि उसकी ममी कह रही है कि दिन साफ हुआ, तो सुबह वे लोग वहां से चले जाएंगे। रात को जिस तरह वर्षा हो रही थी, उससे सुबह तक

आकाश के साफ होने की कोई सम्भावना नहीं लगती थी। इसलिए सोने के समय उसका मन इस ओर से लगभग निश्चिन्त था। परन्तु रात-रात में आकाश का दृश्यपट बिलकुल बदल गया था। तो क्या सचमुच आज ही उन लोगों को वहां से चले जाना था ?

उसने कमरे के बिखरे हुए सामान को देखा—दो-चार इनी-गिनी चीज़ें ही थीं। चाहा कि उन्हें सहेज दे। मगर किसी चीज़ को रखने-उठाने को मन नहीं हुआ। बिस्तर को देखा जिसमें रोज़ से बहुत कम सलवटें पड़ी थीं। लगा जैसे रात की गहरी नींद के लिए वह बिस्तर ही दोषी हो और गहरी नींद ही—बरसते हुए आकाश के साफ हो जाने के लिए ! उसने बिस्तर की चादर को हिला दिया कि उसमें और सलवटें पड़ जाएं मगर उससे चादर में जो दो-एक सलवटें थीं, वे भी निकल गईं। वह फिर से एक नींद लेने के इरादे से बिस्तर पर लेट गया।

शरीर में थकान बिलकुल नहीं थी, इसलिए नींद नहीं आई। कुछ देर करवटें लेने के बाद वह नहाने-धोने के लिए उठ गया। लड़खड़ाते क़दमों से सुबह दोपहर की तरफ बढ़ने लगी, तो उसके मन को कुछ सहारा मिलने लगा। वह चाहने लगा कि इसी तरह शाम हो जाए और फिर रात—और बच्चा उससे विदा लेने के लिए न आए। परन्तु इसी तरह जब दोपहर भी ढलने को आ गई और बच्चा नहीं आया, तो उसके मन में धीरे-धीरे एक और ही आशंका सिर उठाने लगी। वह सोचने लगा कि दिन साफ होने से उसकी ममी कहीं सुबह-सुबह ही तो उसे लेकर वहां से नहीं चली गई ?

वह बार-बार बालकनी पर जाता—एक धड़कती हुई आशा और आशंका लिए हुए। बार-बार टूरिस्ट होटल की तरफ जानेवाले रास्ते पर नज़र डालता और एक अनिश्चित-सी अनुभूति लिए हुए कमरे में लौट आता। उसकी धमनियों में लहू का हर कण, मस्तिष्क में चेतना

का हर बिन्दु उत्कंठा से व्याकुल था। उसने कुछ खाया नहीं था, इसलिए भूख भी उसे परेशान कर रही थी। कुछ देर के बाद कमरा बन्द करके वह खाना खाने चला गया। मोटे-मोटे कौर निगलकर उसने किसी तरह दो रोटियां गले से उतारां और तुरन्त वापस चल पड़ा। कुछ क्षणों के लिए भी कमरे से बाहर और बालकनी से दूर रहना उसे एक अपराध की तरह लग रहा था। लौटते हुए उसने सोचा कि उसे खुद टूरिस्ट होटल में जाकर पता कर लेना चाहिए कि वे लोग वहीं हैं या चले गए हैं। मगर सड़क की चढ़ाई चढ़ते हुए उसने दूर से ही देखा—बीना बच्चे के साथ उसकी बालकनी के नीचे खड़ी थी। वह हांफता हुआ तेज-तेज चलने लगा।

वह पास जा पहुंचा, तो भी बच्चे ने उसकी तरफ नहीं देखा। वह अपनी मां का हाथ खींचता हुआ किसी बात के लिए हठ कर रहा था। प्रकाश ने उसकी बांह को हाथ में ले लिया, तो वह उससे बांह छुड़ाने का प्रयत्न करने लगा। "मैं तुम्हारे घर नही जाऊंगा," उसने लगभग चीखकर कहा। प्रकाश अचकचा गया और मूढ़-सा उसकी तरफ देखता रहा।

"क्यों, तू मुझसे नाराज़ है क्या ?" उसने पूछा।

"ममी मेरे साथ क्यों नहीं चलती ?" बच्चा फिर उसी तरह चिल्लाया।

प्रकाश और बीना की आंखें एक-दूसरे की तरफ उठने को हुईं, मगर पूरी तरह नहीं उठ पाईं। प्रकाश ने बच्चे का बांह फिर थाम ली और बीना से कहा, "आप भी साथ आ जाइए न !"

"इसे आज जाने क्या हुआ है ?" बीना झुंझलाहट के साथ बोली। "सुबह से ही तंग कर रहा है !"

"इस वक्त यह आपके बिना ऊपर नहीं जाएगा," प्रकाश ने कहा। 'आप साथ आ क्यों नहीं जातीं ?"

"चल मैं तुझे ज़ीने तक पहुंचा देती हूं," बीना उसे उत्तर न देकर बच्चे से बोली। "ऊपर से जल्दी ही लौट आना। घोड़ेवाले कितनी देर से तैयार खड़े हैं।"

प्रकाश को अपने अन्दर एक नश्तर-सा चुभता महसूस हुआ। मगर जल्द ही उसने अपने को संभाल लिया। "आप लोग आज ही जा रहे हैं क्या ?" वह किसी तरह कठिनाई से पूछ सका।

"जी हां," बीना दूसरी तरफ देखती रही। "जाना तो सुबह-सुबह ही था मगर इसके हठ की वजह से इतनी देर हो गई है। अब भी यह…।" और वह बात बीच में ही छोड़कर उसने बच्चे से फिर कहा, "तो चल तुझे ज़ीने तक पहुंचा दूं।"

बच्चा प्रकाश के हाथ से बांह छुड़ाकर कुछ दूर भाग गया। "मैं नहीं जाऊंगा," उसने कहा।

"अच्छा आ जा," बीना बोली। "मैं तुझे ज़ीने के ऊपर तक छोड़ आऊंगी—उस दिन की तरह।"

"मैं नहीं जाऊंगा," और बच्चा कुछ कदम और भी दूर चला गया।

"आप साथ आ क्यों नहीं जातीं ? यह इस तरह अपना हठ नहीं छोड़ेगा," प्रकाश ने कहा। बीना ने आधे क्षण के लिए उसकी तरफ देखा। उस दृष्टि में आक्रोश के अतिरिक्त न जाने क्या-क्या भाव था ! परन्तु आधे क्षण में ही वह भाव धुल गया और बीना ने अपने को सहेज लिया। उसके चेहरे पर एक तरह की दृढ़ता आ गई और उसने बच्चे के पास जाकर उसे उठा लिया। "तो चल मैं तेरे साथ चलती हूं," उसने कहा।

बच्चे का रुआंसा भाव एक क्षण में ही बदल गया और उसने हंसते हुए अपनी मां के गले में बांहें डाल दीं। प्रकाश ने धीरे से कहा, "आइए" और उन दोनों के आगे-आगे चलने लगा।

ऊपर कमरे में पहुंचकर बीना ने बच्चे को नीचे उतार दिया और कहा, "ले, अब मैं जा रही हूं।"

"नहीं," बच्चे ने उसका हाथ पकड़ लिया। "तुम भी यहां बैठो।"

"बैठिए," प्रकाश ने कुरसी पर पड़ी हुई दो-एक चीज़ें जल्दी से उठा दीं और कुरसी बीना की तरफ बढ़ा दी। बीना कुरसी पर न बैठकर चारपाई के कोने पर बैठ गई। बच्चे का ध्यान सहसा न जाने किस चीज़ ने खींच लिया। वह उन दोनों को छोड़कर बालकनी में भाग गया और वहां से उचककर सड़क की तरफ देखने लगा।

प्रकाश कुरसी की पीठ पर हाथ रखे जैसे खड़ा था, वैसे ही खड़ा रहा। बीना चारपाई के कोने पर और भी सिमटकर दीवार की तरफ देखने लगी। सहसा असावधानी के एक क्षण में उनकी आंखें मिल गईं, तो बीना ने जैसे पूरी शक्ति संचित करके कहा, "कल इसकी जेब में कुछ रुपये मिले थे। आपने रखे थे?"

प्रकाश सहसा ऐसे हो गया जैसे किसीने उसे पकड़कर झकझोर दिया हो। "हां," उसने लड़खड़ाते हुए स्वर में कहा। "सोचा था कि उनसे यह कोई चीज़...कोई चीज़ बनवा लेगा।"

बीना पल-भर चुप रही। फिर बोली, "क्या चीज़ बनवानी होगी?"

"कोई भी चीज़ बनवा दीजिएगा। कोई अच्छा-सा ओवरकोट या....।"

कुछ देर फिर चुप्पी रही। फिर बीना बोली, "कैसा कोट बनवाना होगा?"

"कैसा भी बनवा दीजिएगा। जैसा इसे अच्छा लगे, या...या जैसा आप ठीक समझें।"

"कोई खास कपड़ा लेना हो, तो बता दीजिए।"

"नहीं, खास कोई नहीं। कैसा भी ले लीजिएगा।"

"कोई खास रंग···?"

"नहीं···हां···अगर नीले रंग का हो, तो ज़्यादा अच्छा रहेगा।"

बच्चा उछलता हुआ बालकनी से लौट आया और बीना का हाथ पकड़कर बोला, "अब चलो।"

"पापा से तूने प्यार तो किया ही नहीं और आते ही चल भी दिया?" प्रकाश ने उसे बांहों में ले लिया। बच्चे ने उसके होंठों से होंठ मिलाकर एक बार अच्छी तरह उसे चूम लिया और फिर झट से उसकी बांहों से उतरकर मां से बोला, "अब चलो।"

बीना चारपाई से उठ खड़ी हुई। बच्चा उसका हाथ पकड़कर उसे बाहर की तरफ खींचने लगा। "तलो न ममी देल हो लही है," वह फिर तुतलाने लगा और बीना को साथ लिए हुए दहलीज़ पार कर गया।

"तू जाकर पापा को चिट्ठी लिखेगा न?" प्रकाश ने पीछे से पूछा।

"लिथूंदा।" मगर उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा। पीछे मुड़कर देखा एक बार बीना ने, और जल्दी से आंखें हटा लीं। उसकी आंखों के कोरों में अटके हुए आंसू उसके गालों पर बह आए थे। "तूने पापा को टा-टा नहीं किया," उसने बच्चे के कन्धे पर हाथ रखे हुए कहा। आंखों की तरह उसका स्वर भी भीगा हुआ था।

"टा-टा पापा!" बच्चे ने बिना पीछे की तरफ देखे हाथ हिला दिया और ज़ीने से उतरने लगा। आधे ज़ीने से फिर उसकी आवाज़ सुनाई दी, "पापा का घल अच्छा नहीं है ममी, हमाले वाला घल अच्छा है। पापा के घल में तो कुछ भी छामान ही नहीं है···!"

"तू चुप करेगा कि नहीं?" बीना ने उसे झिड़क दिया। "जो मुंह में आता है बोलता जाता है।"

"नहीं तुप कलूंगा, नहीं कलूंगा तुप···," बच्चे का स्वर फिर रुआंसा हो गया और वह तेज़-तेज़ कदमों से नीचे उतरने लगा। "पापा का घल

गन्दा ! पापा का घल थू…!"

रात होते-होते आकाश फिर घिर आया। प्रकाश क्लब के बाररूम में बैठा एक के बाद एक बियर की बोतलें खाली करता रहा। बारमैन अब्दुला लोगों के लिए रम और व्हिस्की के पेग ढालता हुआ बार-बार कनखियों से उसकी तरफ देख लेता था। इतने दिनों में पहली बार वह प्रकाश को इस तरह पीते देख रहा था। "आज लगता है इस साहब ने कहीं से बहुत माल मारा है," उसने एक बार धीमे स्वर में शेर मुहम्मद से कहा। "आगे कभी एक बोतल से ज़्यादा नहीं पीता और आज चार-चार बोतलें पीकर भी बस करने का नाम नहीं ले रहा।"

शेर मुहम्मद ने सिर्फ मुंह बिचका दिया और अपने काम में लगा रहा।

प्रकाश की आंखें अब्दुल्ला से मिलीं, तो अब्दुल्ला मुस्करा दिया। प्रकाश कुछ क्षण इस तरह उसे देखता रहा जैसे वह इन्सान न होकर एक धुंधला-सा साया हो और अपने सामने का गिलास परे सरकाकर उठ खड़ा हुआ। काउंटर के पास जाकर उसने दस-दस के दो नोट निकालकर अब्दुल्ला के सामने रख दिए। अब्दुल्ला बाकी पैसे गिनता हुआ खुशामदी स्वर में बोला, "आज साहब बहुत खुश नज़र आता है।"

"अच्छा ?" प्रकाश इस तरह उसे देखता रहा जैसे उसके देखते-देखते वह साया धुंधला होकर बादलों में गुम होता जा रहा हो। जब वह चलने को हुआ, तो अब्दुल्ला ने पहले सलाम किया और फिर पूछ लिया, "क्यों साहब, वह कौन था उस दिन आपके साथ? किसका लड़का था वह ?"

प्रकाश को लगा जैसे वह साया अब बिलकुल गुम हो गया हो और उसके सामने सिर्फ बादल ही बादल घिरा रह गया हो। उसने जैसे दूर

बादल के गर्भ में देखने की चेष्टा करते हुए कहा; "कौन लड़का ?"

अब्दुल्ला पल-भर के लिए भौंचक्का-सा हो रहा, फिर सहसा खिल-खिलाकर हंस पड़ा। "तब तो मैंने शेर मुहम्मद से ठीक ही कहा था···," वह बोला।

"क्या कहा था ?"

"कि हमारा साहब तबीयत का बादशाह है। जब चाहे जिसके लड़के को अपना लड़का बना ले और जब चाहे···यहां गुलमर्ग में तो यह सब चलता है ! आप जैसा ही हमारा एक और साहब है···"

प्रकाश को लगा कि बादल बीच से फट गया है और चीलों की कई-एक पंक्तियां उस दर्रे में से होकर दूर-दूर उड़ी जा रही हैं—वह चाह रहा है कि दर्रा किसी तरह भर जाए, जिससे वे पंक्तियां आंखों से ओझल हो जाएं; मगर दर्रे का मुहाना और-और बड़ा होता जा रहा है। उसके गले से एक अस्पष्ट-सी आवाज़ निकल पड़ी और वह अब्दुल्ला की तरफ से आंखें हटाकर चुपचाप वहां से चल दिया।

"बस एक बाज़ी और···!" अपनी आवाज़ की गूंज प्रकाश को स्वयं बहुत अस्वाभाविक लगी। उसके साथियों ने हल्का-सा विरोध किया मगर पत्ते एक बार फिर बंटने लगे।

कार्ड-रूम तब तक लगभग खाली हो चुका था। कुछ देर पहले तक वहां काफी चहल-पहल थी—नाज़ुक हाथों से पत्तों की नाज़ुक चालें चल रही थीं और शीशे के नाज़ुक गिलास रखे और उठाए जा रहे थे। मगर अब आसपास चार-चार खाली कुर्सियों से घिरी हुई चौकोर मेज़ें बहुत अकेली और उदास लग रही थीं। पालिश की चमक के बावजूद उनमें एक वीरानगी आ गई थी। सामने की दीवार में बुखारी की आग भी कब की ठंडी पड़ चुकी थी। जाली के उस तरफ कुछ बुझे-अधबुझे

ंगारे ही रह गए थे—सर्दी से ठिठुरकर स्याह पड़ते और राख में गुम होते हुए।

उसने पत्ते उठा लिए। हर बार की तरह इस बार भी सब बेमेल पत्ते थे—ऐसी बाज़ी कि आदमी फेंककर अलग हो जाए। मगर उसीके अनुरोध से पत्ते बंटे थे, इसलिए वह उन्हें फेंक नहीं सकता था। उसने नीचे से पत्ता उठाया, तो वह और भी बेमेल था। हाथ से कोई भी पत्ता चलकर वह उन पत्तों का मेल बैठाने का प्रयत्न करने लगा।

बाहर मूसलाधार वर्षा हो रही थी—पिछली रात जैसी वर्षा हुई थी, उससे भी तेज़। खिड़की के शीशों से टकराती हुई बूंदें बार-बार एक चुनौती लिए हुए आती थीं, परन्तु सहसा बेबस होकर नीचे को ढुलक जाती थीं। उन बहती हुई धारों को देखकर लगता था जैसे कई एक चेहरे खिड़की के साथ सटकर अन्दर झांक रहे हों और लगातार रो रहे हों। किसी क्षण हवा से किवाड़ हिल जाते थे, तो वे चेहरे जैसे हिचकियां लेने लगते थे। हिचकियां बन्द होने पर वे गुस्से से घूरने लगते। उन चेहरों के पीछे अंधेरा छटपटाता हुआ दम तोड़ रहा था।

"डिक्लेयर!" प्रकाश चौंक गया। उसके हाथ में पत्ते अभी उसी तरह थे—इस बार भी उसे फुल हैंड ही देना था। पत्ते फेंककर उसने पीछे टेक लगा ली और फिर खिड़की से सटे हुए चेहरों को देखने लगा।

"तुम बहुत ही खुशकिस्मत हो प्रकाश, सचमुच हममें सबसे खुशकिस्मत आदमी तुम्हीं हो...।" प्रकाश की आंखें खिड़की से हट आईं। पत्ते उठाकर रख दिए गए थे और मेज़ पर हारजीत का हिसाब किया जा रहा था। हिसाब करनेवाला व्यक्ति ही उससे कह रहा था, "कहते हैं न कि जो पत्तों में बदकिस्मत हो, वह ज़िन्दगी में खुशकिस्मत होता है! अब देख लो, सबसे ज़्यादा तुम्हीं हारे हो, इसलिए यह मनना पड़ेगा कि सबसे खुशकिस्मत आदमी तुम्हीं हो।"

प्रकाश ने अपने नाम के आगे लिखे गए जोड़ को देखा। पल-भर के लिए उसकी धड़कन बढ़ गई कि उसकी जेब में उतने पैसे हैं भी या नहीं। जेब में हाथ डालकर उसने पूरी जेब खाली कर ली। लगभग हारी हुई रकम के बराबर ही पैसे जेब में थे। वह रकम अदाकर देने के बाद दो-एक छोटे-छोटे सिक्के ही पास में बच रहे—और उनके साथ वह मुचड़ा हुआ अन्तर्देशीय पत्र जो शाम की डाक से आया था और जिसे जेब में रखकर वह क्लब चला आया था। पत्र निर्मला का था जो उसने अब तक खोलकर पढ़ा नहीं था। जेब में पड़े-पड़े वह पत्र काफी मुचड़ गया था। निर्मला के अक्षरों की बनावट पर नज़र पड़ते ही निर्मला के कई-कई उन्मादी चेहरे उसके सामने आने लगे—उसके हाथ का लिखा एक-एक अक्षर जैसे एक-एक चेहरा हो! घर से चलने के दिन भी वह उसके कितने-कितने चेहरे देखकर आया था! एक चेहरा था जो हंस रहा था, एक था जो रो रहा था; एक बाल खोले हुए ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा था और धमकियां दे रहा था और एक''''''एक चेहरा भूखी आंखों से उसके शरीर को निगलना चाह रहा था! उसने रोज़ के इस्तेमाल का कुछ सामान साथ लाना चाहा था, तो एक चेहरा उसके साथ मल्लयुद्ध करने पर उतारू हो गया था।

"निर्मला!" उसने हतप्रभ होकर कहा था। "तुम्हें इस तरह गुत्थम-गुत्था होते शरम नहीं आती?"

"क्यों?" निर्मला हंस दी थी। "मरद और औरत रात-दिन गुत्थम-गुत्था नहीं होते क्या?"

वह बिना एक कमीज़ तक साथ लिए घर से चला आया था। बनियान, तौलिया, कंघा, कमीज़ सब कुछ उसने आते हुए रास्ते में खरीदा था—यह सोचने के लिए वह नहीं रुका था कि उसके पास जो चार-पांच सौ रुपये की पूंजी है, वह इस तरह कितने दिन चलेगी! बिछाने-ओढ़ने

का सामान भी उसे वहां पहुंचकर ही किराये पर लेना पड़ा था……!

और वहां आने के चौथे-पांचवें रोज़ से ही निर्मला के पत्र आने लगे थे—वह उसके किसी मित्र के यहां जाकर उसका पता लगा आई थी। उन पत्रों में भी निर्मला के वे सब चेहरे ज्यों के त्यों विद्यमान रहते थे……वह सख्त बीमार है और अस्पताल जा रही है……उसके भाई पुलिस में खबर करने जा रहे हैं कि उनका बहनोई लापता हो गया है… वह रात-दिन बेचैन रहती है और दीवारों से पूछती है कि उसका "चांद कहां है"……वह जोगिन का वेश धारण करके जंगलों में जा रही है… दो दिन के अन्दर-अन्दर पत्र का उत्तर न आया, तो उसके भाई उसे हवाई जहाज़ में बिठाकर वहां भेज देंगे…उसके छोटे भाई ने उसे बहुत पीटा है कि वह अपने 'खसम' के पास क्यों नहीं जाती……!

अन्तर्देशीय पत्र प्रकाश की उंगलियों में मसल गया था। उसे फिर से जेब में रखकर वह उठ खड़ा हुआ। बाहर ड्योढ़ी में कुछ लोग जमा थे—कि बारिश रुके, तो वहां से जाएं। उनके बीच से होकर वह बाहर निकल आया।

"आप इस बारिश में जा रहे हैं?" किसीने उससे पूछा। उसने चुपचाप सिर हिला दिया और कच्चे रास्ते पर चलने लगा। नानने केवल 'नीडोज़ होटल' की बत्तियां जगमगा रही थीं—बाकी सब तरफ दाएं-बाएं और ऊपर-नीचे अंधेरा ही अंधेरा था। क्लब के अहाते से निकलकर वह सड़क पर पहुंचा, तो पानी और भी तेज़ हो गया।

उसका सिर पूरा भीग गया था और पानी की धारें गले से होकर कपड़ों के अन्दर जा रही थीं। हाथ-पैर सुन्न हो रहे थे मगर आंखों में उसे एक जलन-सी महसूस हो रही थी। कीचड़ से लथपथ पैर रास्ते में आवाज़ करते थे तो उसके शरीर में कोई चीज़ झनझना उठती थी। सहसा एक नई सिहरन उसके शरीर में भर गई। उसे लगा कि वह

सड़क पर अकेला नहीं है—कोई और भी अपने नन्हे-नन्हे पांव पटकता हुआ उसके साथ चल रहा है। रास्ते की नाली पर बना हुआ लकड़ी का छोटा-सा पुल पार करते हुए उसने घूमकर उस तरफ देखा। उसके साथ-साथ चल रहा था एक भीगा हुआ कुत्ता—कान झटकता हुआ, खामोश और अन्तर्मुख !